

सत्यमेव जयते



अपनी प्रिय धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रावती देवी
की पुण्य स्मृति में
प्रोफेसर प्राणनाथ
डी० एस सी० द्वारा भेंट ।



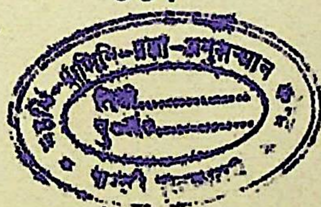


सुलभ-साहित्यमाला

जैनेन्द्र-साहित्य

(दूसरा भाग)

परख-स्पर्द्धा



२

लेखक

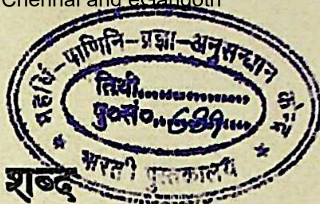
श्री जैनेन्द्रकुमार

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक,
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

चतुर्थ आवृत्ति

मुद्रक,
कन्हैयालाल शाह
ओरियण्ट प्रिंटिंग हाउस,
दादीशेठ अग्यारी लेन, बम्बई



लेखकके कुछ शब्द

इस किताबके बारेमें मुझे कुछ शब्द कहने हैं। खुद किताबसे शायद ये शब्द ज़्यादा क़ीमती हों। इसलिए ज़्यादा सतर्क होकर और ज़्यादा निश्चयसे मैं उन्हें कहूँगा।

मैंने इसमें काफ़ी स्वतन्त्रतासे काम लिया है। पर, विश्वास है, उसका दुरुपयोग नहीं किया। जो दुरुपयोग नहीं करता उसके हाथमें मैं ज्यादेसे ज्यादे स्वतन्त्रता देनेसे नहीं डरता। जो जानता है, स्वतन्त्रता बड़ी क़ीमती चीज़ है, उसका अपव्यय और उसका कदर्य उपयोग करना मानों उसकी हत्या करना है, वह स्वतन्त्रता अपनायेगा तो उसे कोई नहीं टोक सकेगा। मैं यही कहता हूँ।

क्या कहूँ, और कैसे कहूँ,—इन दोनों बातोंमें मैंने किसी नियमको सामने नहीं रक्खा है। हाँ लेखकके दायित्वको और स्वतन्त्रताके मूल्यको प्रत्येक क्षण सामने रक्खा है। मैंने सदा ध्यान रक्खा है, जो दूँ उसमें अपनेको धोखा न दूँ, और दुनियाको धोखा न दूँ। लेखकका काम बड़ी जोखमका है, मैं समझता हूँ, इस किताबमें मैं उसे कहीं नहीं भूला हूँ।

न भाषाका शिकंजा है, न भावका। दोनों किसी कोडके नियमोंमें बँधकर नहीं रह सकते। जिसे बढ़ना है, वैसी कोई भी चीज शिकंजेमें कसी नहीं रह सकती। शिकंजेमें कस दोगे तो वह नहीं बढ़ेगी, लुँज रह जायगी,—हम उसीको सुन्दरता मानने लग जाँय तो बात दूसरी, पर, दुनियाकी स्पर्द्धा और दौड़में वह कहींकी नहीं रह सकती। जैसे चीनी स्त्रियोंके पैर। हिन्दी-भाषा-भाषियों और भाषा-लेखकोंको यह सत्य, पूरे हर्षसे और बिना ईर्ष्याके, मान लेना और अपना लेना चाहिए। भाषाका, और दुनियाका हित इसीमें है।

उपन्यासमें जैसी दुनिया है वैसी ही चित्रित नहीं होती। दुनियाका कुछ उठा हुआ, उन्नत, कल्पित रूप चित्रित किया जाता है। वह उपन्यास किसी कामका नहीं, जो इतिहासकी तरह घटनाओंका बखान कर जाता है। कामसे मतलब, वह दुनियाको आगे बढ़ाने और बढ़नेमें ज़रा मदद नहीं देता। क्योंकि न वह इतिहास होता है, न उपन्यास ही। इतिहासका अपना मूल्य है। वह विश्वकी

प्रगतिके मार्गका नक़शा हमारे सामने रखता जाता है। इसी तरह साहित्यके हर 'प्रकार'का अपना मूल्य है। उपन्यासका काम है, कुछ आगेकी,—भविष्यकी संभावनाओंकी जरा झाँकी दिखाना। और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नये, अजीब ही ढंगसे रँगे और उपादेय जीवनका चित्र हमारे सामने रखता है। जीवनके साधारण कृत्य और उलझी गुत्थियोंको सुलझाकर और खोल-खालकर रख देता है। उपन्यास, इस तरह, सत्यमें स्वप्नकी पुट देकर, वास्तवमें कल्पना मिलाकर, व्यवहारसे आदर्शका साम्य और सामन्जस्य स्थापित कर, और वर्तमानपर भविष्यका रँग चढ़ाकर जीवनका वह रूप पेश करता है जो जीवनसे मिलता जुलता है, फिर भी अनोखा है, जिससे मनोरंजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी, और जिससे हठात्, एक नई चीज हृदयमें पैठ जाती है और हम जरा आगे बढ़ जाते हैं। हमें मालूम भी नहीं होता, पर एक संस्कार,—एक नई बात धीरे धीरे उगना आरम्भ हो जाती है। वह शिक्षा और वह नई चीज अमुक शब्दों और वाक्योंमें नहीं होती, उपदेशात्मक नहीं होती, बहुत अधिक प्रकट और विवेचन-गम्य नहीं होती। और वह बहुत कम विश्लेषण और मस्तिष्ककी पकड़में आ पाती है। चित्रमें भावकी तरह वह सारी कृतिमें रमी रहती है। मस्तिष्ककी विवेचनाको पार कर हृदयकी अनुभूतिमें सीधी जाकर ऐसी चुभती है कि चाहे मस्तिष्क बोखलाता ही रह जाय, हृदय हिल जाता है। मस्तिष्क उसका उद्देश्य ढूँढ़ने और पकड़नेमें ही उलझा रह जाता है, उधर व्यक्तिको कुछ क्षणकी तन्मयता,—एक आनन्द, रस, एक शक्ति, एक प्रकारकी आत्मानुभूति प्राप्त हो चुकी होती है। जो तीरकी तरह अन्तः तक जा लगे। बुद्धिके पटल और जालको भेदकर मर्ममें घुस जाय, और हलचल उपस्थित कर दे, वह,—विद्वान् चाहें कितना ही उसे पहेली कहें, विद्वत्ता उसका मतलब (What it means ?) समझनेमें कितनी ही अकृत-कार्य रहे, और वह उद्देश्य (?) का कितना ही अभाव दीखे,—वह सच्ची चीज है, उपोदय है, और वह जीने और जिलानेके लिए आई है। वह कला है। अर्थ-अर्थी जगत् अपनी 'उद्देश्य-पूर्णता'की परिभाषाके घेरेमें उसकी उपयोगिताको न बाँध पाये इसमें अचरज नहीं। प्रत्युत् यह तो बिल्कुल स्वाभाविक और संभवनीय है। पर इससे जगत्‌को चिढ़ना न चाहिए, न हठात् उस कलाको निर्वासित और संकुचित करनेकी कोशिश करनी चाहिए। इससे उसकी उपयोगिता

न कम वेगवती होती है न कम मूल्यवती, और न ही कम आदरणीय।

कलाविदों और संपादक-कोविदोंकी छानबीनके लिए ये शब्द, जरूरी समझकर और झिझकते मनसे, उनकी सेवामें पेश कर दिये जाते हैं।

मैंने जगह जगह कहानीके तारकी कड़ियाँ तोड़ दी हैं। वहाँ पाठकको थोड़ा कूदना पड़ता है। और मैं समझता हूँ, पाठकके लिए यह थोड़ा आयास वांछनीय होता है,—अच्छा ही लगता है।

कहीं एक साधारण भावको वर्णनसे फुला दिया है, कहीं लम्बा-सा रिक्त (Gap) छोड़ दिया है; कहीं बारीकीसे काम लिया है, कहीं लापर्वाहीसे; कहीं हलकी धीमी क़लमसे काम लिया है, कहीं तीक्ष्ण और भागतीसे। मैं समझता हूँ, यह सब कुछ चित्रमें खूबी और असलियत लानेके लिए जरूरी हो पड़ता है। यह कम-ज्यादे रंगकी शोभा रंग-बिरंगेपनमें और स्वाद देती है।

एक और भी बात है। सभी पात्रोंको मैंने अपने हृदयकी सहानुभूति दी है। जहाँ यह नहीं कर पाया हूँ, उसी स्थलपर, समझता हूँ, मैं चूका हूँ। दुनियामें कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है, जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है, न पशु। सब आदमी ही हैं, देवतासे कम ही, और पशुसे ऊपर ही। इस तरह किसे अपनी सहानुभूति देनेसे इंकार कर दिया जाय?

पाठकोंसे एक विनय है। मुझे भी वह अपनी सहानुभूति देते रुकें नहीं। सफल हूँ तो, असफल हूँ तो, उनकी सहानुभूति मुझे चाहिए ही। क्योंकि मैं जानता हूँ, मैं क्या हूँ।

पहाड़ी धीरज, दिल्ली
१९-१०-२९

जैनेन्द्रकुमार



दूसरे संस्करणके समय

सन्' २९ से अब' ४१ आ गया है। एक खासा अरसा हो गया। अब सूरतें बदल गई हैं। जग बदला, मैं भी बदला हूँगा। यह पुस्तक देखते समय जी किया कि अगर इसे इन्कार न करूँ तो यहाँसे वहाँ तक उसे बदल तो दूँ ही। पर यह मैं नहीं कर सकता था। इससे जहाँ तहाँ उसे छुआ भर है, विशेष फेरफार नहीं किया है।

पहले संस्करणके समयके अपने आरम्भिक वक्तव्यसे आज मैं अप्रसन्न हूँ। पर क्या करूँ? आजका सच बीते कलके निषेधपर नहीं, स्वीकार-पर ही कायम हो सकता है।

दरियागंज, दिल्ली
२३–१–४१

जैनेन्द्रकुमार

परख

१

वकालत पास तो की, पर शुरू न की। इसके दो कारण हुए। बी० ए० पास करनेके बाद टाल्स्टाय, रस्किन, गाँधी या जाने किसका एक विचार-स्फुलिंग इनके जवानीके तेज खूनमें पड़ गया था। उस वक्त तो सामने एल-एल० बी० की पढ़ाई आ गई, उसे पढ़ने और पास करनेकी फ़िक्रमें लग जाना पड़ा, इससे कोई खास फल दिखाई न दिया। पर वकालतका इम्तहान देकर, शहर-के कोलाहल और व्यस्ततासे दूर, अपने गाँव में जब आये और जीवन-क्षेत्रमें कदम रखनेकी बातें सोचने लगे, तो वह स्फुलिंग भी चेता। अब तक भीतर ही भीतर वह इनके खूनमें अपना ज़हर काफ़ी फैलाता रहा था। वक्त आया तो अपनी गर्मीसे इन्हें दहका दिया। सोचा—वकालतमें क्या है? अपने देशका सत्यानाश है, और अपनी आत्माका सत्यानाश है।

एक दूसरी बात और हो गई जिसने इनके इस विचारपर मोहरका काम दिया। गाँवमें इनकी थोड़ी जमींदारी थी, प्रतिष्ठा भी थी। इनकी सहृदयतासे भी आस-पासके लोग परिचित थे। अपने जीकी सुनाने इनके पास आ जाया करते थे। एक रोज इन्होंने ऐसी बात सुनी कि यह तैशमें आ गये और इन्हें एक जोखमका कर्तव्य सामने दिखाई देने लगा।

मुंशी होशियार बहादुर ज़िलेके नामी-गिरामी वकील थे। आमदनी खूब थी। दबदबा भी खूब था। एक मवक्किलने आकर इनकी बदनीयतीका हाल सुनाया।

फ़ौजदारीका मुकद्दमा था। मवक्किल बड़ी आफ़तमें था। मुंशीजीने आस बँधाई, ढाँढ़स दिलाया और मेहनताना कसकर लिया। पीछे कहीं याद न रहे इससे मेहनताना पेशगी ही दे देना अच्छा होता है। कुलका कुल पेशगी दे दिया गया।

पर वकील साहब तारीखपर गैरहाजिर थे । तारीखें दो बदलीं, तीन बदलीं, पर वकील साहबको किसीपर मौजूद होनेकी फुर्सत न मिल सकी। आखिर एक तारीख और दी गई। अबकी वकील साहब जरूर पहुँचते, पर क्या किया जाय। एक पार्टी आ गई। पार्टीमें शरीक न हों तो कैसे हो!

वह तो खैर हुई कि मवक्किलने जाने क्या सोचकर एक और वकील कर लिया था, नहीं तो न जाने क्या होता।

जब मवक्किल गिड़गिड़ाता वकील साहबकी कोठीपर पहुँचा तो उसे निकलवा दिया गया। कुछ कहा गया तो जवाब दिया गया—रुपये!—अगर बन सके तो वसूल कर ले।

पर वसुल कैसे कर ले? मगरसे वैर कर तो जलमेंसे वसूल किये नहीं जा सकते। और इस तरह जब अदालतकी ही राह बंद हो तो गरीब बेचारा क्या करे?

सुनकर हमारे इन महाशयने निश्चय किया, वकील साहब होशियार-बहादुरको सबक़ सिखायेंगे।

कुछ रोज बाद, कामसे, जिलेके शहरमें जाना हुआ। मुंशी होशियार बहादुर बार-रूममें आराम-कुर्सीपर पड़े, गप लड़ा रहे थे। वकील उन्हें घेरे बैठे थे।

सत्यधन घुसे। (हमारे महाशयने आदर्शकी झोंकमें अपना नाम सत्य-धन रख छोड़ा है।) पैरोंमें धूलसे भरा चरमराता हुआ देशी जूता; मोटा टुकड़ीका कुर्ता; सरपर मटमैलीसी बेढंग टोपी।

वकीलोंने सिर उठाया।—कैसा बेहूदा-सा आदमी है!

होशियार बहादुरको पहचानता तो सत्यधन था ही। सीधे फटकार बतानी शुरू की। जब आदमी अँग्रेजी बोल रहा है और निपट गँवार भेषमें है,—तब किसकी हिम्मत हो कि न अचकचाये। बातके अतिरिक्त, ऐसी हालतमें, और कुछ उपाय हाथमें ले लेनेका सूझ ही नहीं सकता। सत्यधनका भरा गुस्सा चुक चुकनेपर होशियार बहादुरने कहा—आप क्या हैं?

सत्यधनने, तनकर कहा—मैं भी वकालत पास कर चुका हूँ—

सत्यधनकी आदर्श-भक्तिमें शायद वकालत पास होनेके अहंकारको स्थान था।

होशियार बहादुरने मिठाससे कहा—ओ हो, तो आप मेरे नजदीकी हैं। तैशमें न आयँ, यह पेशा ऐसा ही है।

"अपना कुसूर पेशेपर मत टालिए।"

वकीलों के बैठने का कमरा

समाप्त हो जाने पर

"ओ हो ! तो आप ईमानदार वकील बनेंगे? तब तो म्यूजियमके लायक होंगे आप। क्योंकि अभी तक ऐसा जानवर देखा नहीं गया।"

सत्यधनका गुस्सा उबल रहा था और वक्त खा रहा था।

"मैं कहता हूँ..."

"देखो साहब, यह कहते हैं..."

"मैं कहता हूँ..." बात झपटकर सत्यधनने कहा।

छुँटे वकीलने उड़ाते हुए कह दिया—कहते हो अपना सिर, और क्या कहते हो!

"मैं कहता हूँ, सच..."

"उससे वकीलको ताल्लुक नहीं। तुम अभी जानते नहीं, बच्चे हो। या तो युधिष्ठिर ही बन लो, या वकील ही बन लो। सच बोलनेकी कहते हो तो झूठ कहते हो।"

झूठ! ऐसा शब्द सत्यधनके खिलाफ! उसने एक ही झटकेमें बिना अटके कह दिया—

"झूठके बिना वकालत नही, तो मैं वकालत करता ही नहीं। जाओ। मैं केस..."

"बस काफी है। यह ठीक है।"

इतने बहुतसे लोगोंमें की हुई प्रतिज्ञा उनके सिरपर पड़ गई। तब अपने आदर्शके चिंतनकी धुनमें किए हुए कोरे विचार अपने आप निश्चयका रूप धरने लगे और इस प्रतिज्ञाकी जबरदस्तीकी मुहर लगवाकर बाजारमें आने लगे।

(वकालत न करनेकी बात जब टकसाली होकर बाजारमें यों फैल गई, तो अब क्या किया जाय? पढ़े-लिखे पेटके प्रश्नकी ओरसे थोड़े-बहुत निश्चिन्त इस युवकके लिए बस अब एक काम रह गया : आदर्श-आराधन।

तन-मनसे यह आराधना उन्होंने आरंभ की। सोचनेका अपने पीछे व्यसन लगाया, उसके नशेमें अपनेको भूल जानेकी क्षमता भी पैदा की।

कुछ पागल बनना भी शुरू किया। जैसे—

एक रोज बेकनकी किताब पढ़ रहे थे। पढ़ते पढ़ते रुके। जैसे विचार-धाराको कहीं कुछ झटका लगा, और उसका उलझा और रुका हुआ प्रवाह खुलकर बह चला। थोड़ी देर बाद मानों फिर वह एक रोकपर आ गया। तब किताबका वह पन्ना उन्होंने फाड़ लिया।

फिर तो उस पन्नेपर काफ़ी दिक्क़त उठाई गई। ढूँढ़-ढाँढ़कर एक सफ़ेद काग़ज निकाला, नापकर उसके बराबर काटा, ज्यों त्यों कर कहींसे लेही लाये, और उसे फटे पन्नेपर चिपकाया। और उसपर सुन्दर सुन्दर अक्षरोंमें लिखा—

"यह दुनिया एक है। अनेकों,— ऐसी ऐसी असंख्य दुनियाओंमेंसे एक है। मैं उसपरका एक नगण्य बिंदु हूँ।—फिर अहंकार कैसा ?

"यह काल कबसे चला आ रहा है,—कुछ आदि नहीं। कबतक चला जायगा,—कुछ अन्त नहीं। इस अनादि-अनंत काल-सागरके विस्तारमें मेरे सादिसान्त जीवन-बुदबुदकी भी क्या कुछ गणना है ? इन ५०—६०—१०० सालोंकी भी कुछ गिनती है।...फिर भी जीवनका मोह !—छिः।



"इन ५०--६०--१०० सालोंकी, और मेरे अस्तित्वके इस नगण्य बिंदुकी क्या उपयोगिता है ?...इस बे ओर-छोरके ब्रह्मांडकी स्कीममें इस मेरे तुच्छ अहंकारकी क्या सार्थकता है ?"

इसके नीचे तनिक मोटे अक्षरोंमें लिखा—

"अपना सब कुछ मिटाकर इस स्कीममें विलय हो जाना जिससे मेरे जैसे और बुदबुदोंको अवकाश मिले।—धरतीमें गड़कर धरतीके तलको ज़रा ऊँचा कर जाना। भविष्यकी पुष्टिके लिए अपने जीवन और वर्तमानको स्वाह कर जाना।

लिखकर उसे फिर पढ़ा। जितना ही पढ़ते उतना ही उन्हें उसका स्वाद आता। यह लिखनेके लिए मानों अपनेको मन ही मन धन्यवाद देना चाहते थे।

सत्यधनके माँ ही माँ है। पिता नहीं है, न और कोई सगा है। बहन है बड़ी, जो बालबच्चे-दार है। इस तरह वह लगभग सब ओरोंके उत्तर-दायित्वसे निश्चिन्त है। शादी उसकी नहीं हुई। रिश्ते तो बहुत आये, पर शेक्सपीयरकी नायिका बनने योग्य उनमें कोई न थी, इससे स्वीकार नहीं किये। इस तरह बी० ए० भी हो गया, एल-एल० बी० भी गुज़र गया, और अब यह आदर्श क्रांतिका ज़माना आ गया।

अब तक सजधज, ठाट-बाट और प्रतिष्ठाके एवरेस्टपर पहुँचे हुए असाधारण जीवनके स्वप्न देखते थे, अब सोचने लगे, फटे-टूटे मैले, बेहाल,

हीन, अपरिचित, अज्ञात और साधारण रहकर ही जीवनकी क्यों न पूरी तुष्टि प्राप्त कर ली जाय ? अब उन्होंने अपने मार्गके किनारे खड़े 'पोष्टों' परसे 'उन्नति' मिटा या और 'उत्सर्ग' लिख लिया। अब शेक्सपीयरकी नायिकाकी जगह किसी सकुचाई-सी गँवई किशोरिकाको घरमें ले आकर प्रतिष्ठित करना ज्यादे प्रिय लगने लगा जो अभी जीवनके साथ शिक्षाकी और सभ्यताकी बहुत-सी व्यर्थताएँ लपेटना न सीखी हो, जो सीधी-सादी, सच्ची, भोली, तिरस्कृता हो, जिसे इनकी आवश्यकता हो और जिसे सुखी बनकर यह भी समझें 'हाँ, मैंने कुछ किया'। जिसे कुलका और पैसेका दर्प न हो, और जो अपने पतिदेवमें अपना सारा दर्प और गौरव केन्द्रित कर उनकी पूजा कर सके।

विवाह सम्बन्धी विचार जब यह रुख पकड़ रहे थे तभी एक लड़की अजीब ढंगसे इनके जीवनमें अनजानेमें ही हिल-मिल जा रही थी।

यह लड़की इनके ही गाँवकी है। पड़ौसमें ही घर है। गाँवका पड़ोस शहर के पड़ौस जैसा तो होता नहीं, इसलिए वह मानों इनके घरकी ही जैसी है।

जबसे इन्होंने होश सँभाला है, तभीसे वह इनके सामने आती रही है। इनकी आँखोंके सामने यह नन्ही-सी बच्चीसे अब चौदह बरसकी हो गई है। दिन थे, कभी इसे गोदी खिलाया था, बड़े चावसे थपका कर उसे सुलाते थे। फिर दिन आये, वह खेलने खिलाने और चिढ़ाने-मनानेके लायक हो गई। तब उसके साथ यह कौतुक भी सब किया।

इसी बीच एक दुर्घटना घट गई। उससे इनके इस खेलने-खिलानेके रससे भरे संयुक्त जीवनका अंत ही हो गया होता। पर कहिए विधिका विधान ही उलटा पड़ा, या कहें कि अनुकूल पड़ा! क्योंकि चौथे वर्षमें उसका विवाह हो गया और पाँच वर्षकी होते न होते वह विधवा हो गई!

जब विधवा हो गई तब यह तो कैसे होता कि आठवीं क्लासमें पढ़नेवाले छात्रको पता न चलता। पता तो चला, पर यह 'विधवा' विशेषण उन दोनोंके बीचमें आकर खड़ा न हो सका। भला उस एक जरा-सी घटनासे उन दोनोंको क्या मतलब जो एक दिन गाजे-बाजेसे लड्डू-पूरियोंकी ज्यौनारके साथ संपन्न कर दी गई थी? और न इन्हें एक दूर-दराजके श्रीमंत वृद्धके मर जानेसे ही कोई खास सम्बन्ध जान पड़ा। इसलिए इन दोनोंकी दुनिया तो ज्यों की त्यों बनी रही। उलटे इस 'विधवा' शब्दके विशेषणने दोनोंको और निकट ला दिया।

सर्कारी स्कूलके दशम श्रेणीके यह छात्र-महाशय जब पार न पाते, तो लड़कीसे कहते—ओ हो, विधवाजी !...

इसपर सात बरसकी उस लड़कीका चेहरा एकदम फुट-भर लम्बा और मन-भर भारी हो जाता ।

इस कौतुकके लिए 'विधवाजी' का शब्दार्थ समझनेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या यह काफ़ी नहीं था कि वह उसे चिढ़ानेके लिए कहा जा रहा है ? और कभी कभी रूठना क्या स्त्रीत्वका तकाज़ा नहीं ?

इस तरह उस विधवा-शब्दने उन्हें रूठने-रुठाने और मानने-मनानेके बहुत-से अवसर देकर उन्हें एक-दूसरेके और निकट ला दिया ।

किन्तु कालिजसे अब वह दसवीं क्लासका लड़का बहुत होशियार बन आया है । वकील बन आया है, और वकीलके ऊपर अब फिलास्फ़र बन गया है । अब वह भूलकर भी विधवा शब्द, मुँहमें तो क्या, दिमागमें भी नहीं आने देता ।—किन्तु इससे क्या ?

पर जैसे जीवनके पहले रोज़से हम हवाको अपने लिए आवश्यक और सहज- प्राप्त रूपसे स्वीकार कर लेते हैं और उस ओर विशेष ध्यान नहीं देते, ऐसे ही वह भी लड़कीके बारेमें विशेष ध्यान नहीं देते थे । पर इससे क्या ?

हर-साल कालिजकी गर्मीकी छुट्टियोंमें यह लड़कीको पढ़ाया करते थे । कोर्स खतम करनेके बादकी इन छुट्टियों और उन छुट्टियोंमें लड़की कोई अंतर न देख सकी । वह पढ़ने आने लगी । पर यह छुट्टियाँ कब और कैसे खतम की जायेंगी?

पढ़नेका काम आरंभ तो कभीका हुआ, पर बढ़ अभी ज़रा ही पाया है । बात यह है, सालभर यह सिलसिला टूटा पड़ा रहा है, और फिर इन छुट्टियोंमें ही जुड़ता है । गाँवमें वह पढ़े भी और किससे, और अपने आप तो पढ़ती रहे कैसे ? पर इससे उत्साह तोड़नेका नाम न मास्टर साहब लेते हैं न लड़की ।

क्या यह उत्साह प्रशंसनीय नहीं है ?

३

आइए पढ़ना देखें ।

लड़की तन-मनसे पढ़ रही है, पर मास्टरजी तन-मन से नहीं पढ़ा रहे हैं । वह जाने क्या देखते हैं, और फिर क्या सोचते हैं ।

लड़की अपनी सुलेखकी कापीमें बना बनाकर लिखनेमें लगी थी कि उसकी इंगलिश रीडर इन्होंने उठा ली। जो पाठ आज पढ़ना था उस सफ़े-पर निगाह जमाते जमाते लिखना शुरू कर दिया। छपी लाइनोंके बीच बीच-में मोती-से अक्षरोंमें लिखा—

"हमारी कट्टो पढ़ती है। लोग कहते हैं, वह विधवा है। हम कहते हैं, वह कट्टो है और दुनियाभरसे अच्छी है।

"एक रोज़ हम चले जायँगे। वह रह जायगी। फिर वह भी चली जायगी। दुनिया रह जायगी। वाह! —यह तो बड़ी बुरी बात होगी।

आख़िर कट्टोका लिखना ख़तम हुआ और अब पढ़नेका समय आया।

किताब तो गुरुजीने दुबका ली थी,—उन्होंने क़ुसूर जो किया था। किताब भी कुछ ऊट-पटाँग लिखनेकी चीज़ है? कट्टोने अपने चारों तरफ़ किताब देख ली पर न मिली।

गुरुजीने पूछा—क्या है?

उत्तर मिला—हमारी रीडर!

"क्या हमने ले ली?"

"कहाँ गई?"

"देखो।"

कट्टोने फिर देखना शुरू किया। हार हूर कर आ खड़ी हुई—

"देख तो ली।"

"कोई फ़रिश्ते थोड़े ही ले जायँगे! —फिर देखो।" गुरुजीने कहा और किताब कोटकी तहमें सरका ली।

काफ़ी ढूँढ़-ढाँढ़के बाद कट्टोने कहा—

"कोई सुई है! —कितनी तो देख ली!"

"अच्छा, हम साथ-साथ चलते हैं,—अब देखो।"

बहुत कुछ देखा तो उसी कमरेके एक कोनेमें औंधी पड़ी हुई वह किताब मिल गई।

"कहीं तो पटक देती हो,—फिर कहती हो कहाँ चली गई?"

"मैंने तो सँभालके रक्खी थी।"

"बड़ी अच्छी रक्खी थी।"

"...अच्छा, अब सबक़ शुरू करो।"

सबक़ शुरू हुआ। नहीं पन्ना खुला,—

"हैं ! ये क्या कर दिया ! किन्ने कर दिया ?"

"देखें !" मास्टर साहबने किताब लेकर बड़े गौरसे देखी । कहा "कोई बड़ा पागल आदमी है !...यह तुम्हारा ही खेल तो नहीं है ?..."

"मैं सच कहती हूँ—मैंने नहीं किया।"

"सच तो बहुत कहती हो !···फिर कौन कर गया ?"

"तुमने करा होगा।"

"मैंने ?—हरे, राम राम !"

किंतु इस तीव्र विस्मय-बोधकसे लड़कीका संदेह और पुष्ट ही हुआ। पूछा—

"नहीं तो किन्ने ?"

"मैंने ? ····देखो, मैं तुम्हारे सामने ही तो बैठा रहा हूँ।"

"हाँ हाँ ! चुपचाप किताब उठा ली होगी।"

"हरे हरे ! मैं कोई बेवकूफ़ हूँ !"

"हम नहीं जानते। हम तो नहीं पढ़ते। हमें दूसरी किताब लाके दो।"

"कौन लाके दे ?"

"तुम।"

"क्यों ?"

"हम नहीं जानते।"

"तो हम भी नहीं जानते।"

"हम तो नहीं······।"

"तो हम भी नहीं····।"

"नहीं लाके देनेके ?"

"नहीं लाके देनेके।"

"तो हम नहीं पढ़ते।"

"मंत पढ़ो।"

इसपर १४ बरसकी विधवा कट्टो बिना जरा देर लगाये उस किताबको उठाकर और सब बस्ता वहींका वहीं छोड़कर चलती बनी।

"ओ पगली ! कट्टो ! ····सुन तो !"

उसने सुना। लेकिन वह बढ़ती ही रही। आँखोंके ओझल न हो गई, तब तक बढ़ती गई। फिर दूसरे कमरेमें आकर खड़ी हो गई।

"अरी ओ पागल कहींकी ! —सुन !"

कट्टो चुप ।

मास्टरजीको पूर्ण विश्वास था कि कट्टो जायगी नहीं, आ जायगी, इसी-से दो-तीन-चार आवाजें दीं। कट्टो सबको पी गई और दुबकी दुबकी चुप खड़ी रही।

इसपर मास्टर-साहब धड़धड़ाते हुए आये और सीधे बड़े दर्वाजेपर पहुँचे। बाहर सड़कपर देखा,—कट्टो न थी। वह वहीं खड़े रह गये,—कुछ सोचते रह गये। दो तीन मिनट बाद कहा,—'वाह!' और लौट आये।

इधर कट्टो मास्टर-साहबके बाहर होते ही अपने क्लास-रूममें दाखल हो गई थी और आते ही भली विद्यार्थिनीकी भाँति सबकके मुश्किल शब्द किताबोंमेंसे कापीमें नक़ल करने लगी थी।

मास्टरजी आये। आते ही कहा—कौन ?—कट्टो !

उसने कापीमेंसे मुँह नहीं उठाया।

"बड़ी शैतान हो तुम !"

कट्टोको जैसे कापीमें शब्द लिखनेके सिवा दुनियामें किसीसे मतलब ही नहीं।

"और ऐसी छिप कहाँ गई थी ?"

कट्टोने ऊपरको देखा। जैसे उसकी आँखोंमें चुनौती भरी थी, कोई हमें हरा सकता है ? उसने कहा—

"तो नहीं दोगे लाके नई किताब ?"

"क्यों नहीं लाके दूँगा।"

इसपर वह सब कुछ भूल-भालकर, मास्टर-साहबके मुँहके सामने एक बार मुँह बिचकाकर, खिलखिलाकर हँसने लगी।

मास्टरजीने कहा—तो यह किताब तो मुझे दे दो।

लड़कीने पूछा—तो इसमें य' तुम्हींने लिखा था न ?

मास्टरजी पकड़े गये, बोले—हाँ।

लड़कीने कहा—तो हम नहीं देते यह तुम्हें !

"तुम इसका क्या करोगी ?"

"कुछ भी करें !"

"आखिर क्या ?"

"फाड़ दूँगी !"

"अरे, नहीं नहीं !"

किताबको दोनों हाथोंमें पकड़कर लड़कीने कहा—

"देखो, यह फाड़ी, यह !...फाड़ूँ ?"

"नहीं नहीं नहीं !..."

"फाड़ती हूँ !"

"नहीं, देखो, नहीं !"

लड़कीने देखा, मास्टर साहबसे यह नहीं होता कि उससे किताब छीन लें। यही तो वह चाहती है। उसने कहा—मैं तो फाड़ती हूँ।

मास्टरजीने देखा, लड़कीके हाथ जैसे सचमुच किताबके साथ जोर कर रहे हैं। वह उसकी तरफ़ झपटे। लड़की चौकन्नी थी—पलक मारतेमें फुदककर दूर जा खड़ी हुई।

"वाह ! ऐसे झपटे, फिर भी कुछ नहीं !...देखो यह फटी यह !"

मास्टरजीने कहा—तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, फाड़ो मत !

लड़कीने कहा—अच्छा, जोड़ो हाथ।

मास्टर साहबने हाथ जोड़ दिये।

बालिकाने अपने दोनों हाथोंसे उन जुड़े हुए हाथोंको पकड़ लिया। किताब देते हुए कहा—'लो'। फिर कहा—

"अच्छा, अब सबक़ पढ़ाओ।"

मास्टरजी चुपचाप सबक़ पढ़ाने लगे।



जब पढ़ाई ऐसी हो, तो जीमें खलबली मचे कैसे नहीं ? मास्टरजीके जीवनमें थोड़ा मिठास आने लगा।

समझते थे हम एक थिरतापर आ गये हैं। विचारों और धारणाओंको पीट-पीटकर मजबूत करके, उनके ऊपर बैठकर, सोचने लगे थे कि अब डिगेंगे नहीं। जैसे जीवन भी सरल रेखाओंसे घिरा कोई पिण्ड है जिसे नाप-तोलकर निश्चित कर लिया जाय।

पर यह क्या हो गया ? पल-भरमें यह कैसी गड़बड़ मच गई ! अब तक तो

कुछ न था। अपने उस चबूतरेपर बैठ कर जीवनको और संसारको पढ़ने और सुलझाते रहनेमें कोई मुश्किल नहीं जान पड़ी। पर जैसे अब सारा संसार, और वह, और वह उनका चबूतरा,—सब एक झूलेमें झूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्वको डुबाने-उतराने लगी। सब कुछ मिट-मिटाकर सावनके इन्द्र-धनुषके रंगोंमें लय हो गया—और उन रंग बिरंगे रंगोंमें झाँक-झाँक कर देखती हुई दीखने लगी वह कट्टो! यह किसकी माया थी?

ज़रा-सी कंकरीने आकर सोये हुए विशाल जल-तलकी स्थिरता भंग कर दी! हलकी-सी हवाका झोंका जैसे जब जल-तलको थपकता हुआ बहता है, तो उस सारे तलमें एक सिहरन-सी होती है, उसमें कँपकँपी उठ जाती है। वैसे ही किसी अज्ञात आवेगके मीठे झोंकेने उनके सोये जीवनके तलपर एक सिहरन-सी फैला दी। कटोरेको जैसे किसीने बाहरसे छू दिया, और उसके भीतरका पानी यहाँसे वहाँ तक काँप गया।

जीवनकी गहराईमेंसे जो लहर उठी हो, उसको मनुष्यके बनाये हुए धारणा-संकल्पोंके रेतके किनारे कहाँतक कबतक रोक सके हैं?

५

थोड़ा कट्टोसे परिचय करें।

वह चार वर्षकी विधवा है। ग़रीब माँ-बापकी है। बाप है नहीं, माँ ही माँ है। वह माँके ऊपर बोझ है, और माँ जब तनिक झींकती है तो स्वर्गमें जा बैठे उसके निर्मोही बापको याद करती हुई अमुक शब्दोंमें यह सत्य पड़ोसियोंपर और अपनी उस लड़कीपर प्रकट कर देती है। फिर कुछ सगे भी हैं, पर वे हर वक़्तके लिए नहीं।

उसका नाम? हमारे मास्टर-साहबने उसका नाम कट्टो रखा है। लड़की बुरा माने तो माने, हमारे लिए यही नाम यथेष्ट है। और यह नाम बिल्कुल निरर्थक नहीं है। मास्टरजीने रक्खा तो बहुत समझ बूझकर नहीं है, पर बहुत उपयुक्त है। कट्टो गिलहरीको कहते हैं। उसकी ठोड़ी गिलहरीके मुँह जैसी है वैसी ही नोकदार। उसके चेहरेसे भी वही गिलहरीका भाव टपकता है: झटपट झटपट यहाँ दौड़, वहाँ दौड़, इधर देख, उधर देख,—ये सब भाव

उसमें हैं। गिलहरी जब किसी गोल मटरको लेकर, पिछले पैरोंपर उचकी बैठकर, अगले दोनों हाथोंसे मुँहमें दस वार देकर खाती है और आपको ताकती रहती है तो कैसी सुंन्दर लगती है! ऐसी ही वह है और जैसे कट्टो, ज़रा चुटकी बजाओ, तो, चट दरख्तकी छतपर पहुँच जाती है, ऐसे ही मिनट भरमें यह कट्टो कहाँ भाग जायगी, कुछ पता नहीं।

पर, जगत्का वैषम्य देखो। एकके तो ये भाव दुनियाको खुश करते और प्यारे लगते हैं, दूसरीके लिए वे ही उसके पाप हैं। इस लड़कीकी इन बातोंको देखकर लोग बड़े कुढ़ते और नाखुश होते हैं।

लोग कहते हैं,—वह विधवा है कमनसीब। लड़की जान गई है, वह विधवा है, कमनसीब सी होगी। लेकिन फिर हँसने-खेलने, भागने-कूदनेका अधिकार वह क्यों नहीं रखती,—यह वह नहीं समझ पाती।

बालिका सुन्दर नहीं है। उसके ओंठ ज़रा ज्यादे ताज़े और ज्यादे खुले हैं और जैसे फैलते फैलते यकायक रुक गये हैं। चेहरेके एक एक अंगमें और भी दोष निकाले जा सकते हैं। पर वह इन सबसे निश्चिन्त है, और समझती है, वह असुंदर नहीं है, रंग उतना उजला नहीं जितना साँवला है।

(लेकिन आँखें? जाने उनमें क्या है! वह एक क्षण कहीं टिककर ठहरती नहीं। यहाँ-वहाँ तिरती रहती हैं पर ठहरती हैं, तो जैसे उसके भीतर तक चली जाती हैं। उन आँखोंमें जाने कैसा औत्सुक्य और जाने क्या है कि लगता जैसे उसे सब हरियाली है सब निमन्त्रण है, सब चेतावनी है। (उन आँखोंमें एक चमक है और जब पलकें उनपर झुकती हैं तो यह चमक एक पतली-सी रेखामें आ इकट्ठी होती है और वहाँ जैसे आर्द्रता फैल जाती है।)

वे आँखें उसकी बड़ी कुतूहलपूर्ण और बड़ी हिंसामय हैं उसके कुतूहलमें जैसे हिंसा है, और हिंसामें सिवा कुतूहलके कुछ नहीं है। वे आँखें जैसे कहती हैं कि वे सब देखती हैं पर नहीं देखतीं। उनके लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं हैं।

इन आँखोंसे ही कह सकते हो सुंदर नहीं हैं और इनके कारण ही कहा जा सकता है कि अत्यन्त सुन्दर है जैसे मानों स्त्रीत्व छनकर इन आँखोंमें भर गया है।

६

मास्टर साहब सोचमें हैं। सोचते हैं,—यह जो एक नया मीठा-सा उद्वेलन उठा है और जो मुझे झुलाता-ललचाता है, मैं उसे बहला बहला कर पोसना शुरू कर दूँ तो परिणाम अनिष्टकर हो सकता है। क्योंकि कट्टो विधवा है फिर तो उसका विवाह होना अनुचित है।

तभी बस्ता लेकर कट्टो आ पहुँची।

"कट्टो, आज पढ़ना नहीं होगा। आजसे..."

कट्टोका झट-से एक हाथ मास्टर-साहबके माथेपर जा पहुँचा। यह हाथ थर्मामीटर है।

"क्यों, कैसी तबीयत है?"

यह मन क्यों खिसकने लगा? यह बुरी बात है। बोले, तबीयत ठीक है। पर आजसे···

कट्टो मास्टरजीके ऊपर छोटी-मोटी डाक्टरनी बन बैठी है। हाथ रखते बतला दिया, तबियत सचमुच ठीक ही है। शारीरिक कोई शिकायत है ही नहीं। बाकी जो होगा सो वह खुद ही देख लेगी। बोली—

"आज वह फिशरमेनवाला सबक़ है। सी-शोअर मायने क्या, और—और बिलोज···"

"सी-शोअर=किनारा। बिलोज=लहर; पर कट्टो, मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ।"

"अच्छा जाना, मायने लिखा जाओ।"

"नहीं···"

"नहीं कैसी?"

ऐसे जोर-जब्रका उल्लंघन कैसे हो? पढ़नेवाला जब पढ़के ही छोड़ेगा तो पढ़ानेवाला क्या करे? फिर भी बोले—

"ऐसी कोई तुम्हारी जबर्दस्ती है?"

"जबर्दस्ती नहीं तो यों ही—!"

कह तो गई, पर ऐसी बड़ी बात कहकर ख्याल उसे जरूर हुआ। भला पूछो इसकी जबर्दस्ती कैसी? उसने भी सोचा, 'भला सो मेरी जबर्दस्ती कैसी?"

उसने अपनी उन उन्हीं भेदीली आँखोंसे ऊपर देखा। उन आँखोंमें कातर भावसे लिखा था मानो सब तरह की जबर्दस्ती है, नहीं तो मैं कौन हूँ?

मास्टरजीने देखा, कैसी ये आँखें हैं ! सोचा उन्हींको पारकर तो वह ऐसी बड़ी बात कह रही है। उसकी बात उन्हींपर आ पड़ी है। नहीं मानें तो—उन्हींके हाथ है। वही जज हैं, अभियोगकी फरियाद और कहीं नहीं जायगी, उन्हींके पास आयेगी।—फिर वह अभियोगमें हाथ कैसे डालें ? बालाने अपनी बात कहकर उसकी रक्षाका सारा भार उनके ऊपर डाल दिया। अब वह बड़े असमंजसमें पड़ गये। इस सिलसिलेको तोड़ना तो है ही, पर क्या इस तरह ? उनके आसरे जो ज़रा सी बात कह डाली गई है, उसकी रक्षासे विमुख होकर ?— नहीं। उन्होंने कहा—अच्छा, आज पढ़लो कलसे।···

बात जब यों झटपट मान ली गई तो कट्टो समझ गई, यह कोरा मान-मनौवलका तमाशा नहीं है। वह मास्टर साहबको खूब जानती है। मास्टरजी को देखकर और बातके ढंगको देखकर उसे रंचमात्र संशय नहीं रहा कि कल पढ़ाई नहीं होगी। आजका दिन उसकी पढ़ाईका, उसकी जबर्दस्तीका और उसके राज्यका अन्तिम दिन है। उसका उत्साह बुझ गया। बड़े कड़वेपनके साथ बोली—

"ओह, मैं क्या कह गई ! मैं कौन हूँ जो मेरी जबर्दस्तीहो !"

इस अप्रिय बातको संक्षिप्त करनेके लिए मास्टरजीने कहा—

"अच्छा, पढ़ो पढ़ो।"

पढ़ाई हुई। पर बिल्कुल सूखी। वृंत-च्युत फलकी तरह उसका मन टूट-कर धूलमें लोट रहा है। मशीनकी तरह किताबमें आँख गाड़े वह पढ़ रही है, पर क्या खाक-धूल पढ़ रही है, सो कौन जाने।

मास्टरजीका मन भी जैसे मिचला रहा है। जैसे रो उठनेकी तैयारीमें हो।

"कट्टो, अब जाना भी तो होगा।"

" जाना होगा ? क्यों, कहाँ ?—छुट्टियाँ खतम हो गईं ?

छुट्टियाँ खतम नहीं हो गईं, खतम की जा रही हैं। और इस तरहसे कि वह अब लौटें ही नहीं। पर कट्टोसे यह समझाकर कैसे कहा जाय ?

"हाँ, छुट्टियाँ भी खतम होगी ही।"

"पर अबके बड़ी जल्दी—!"

"हाँ।"

यह दबा-सा 'हाँ' सुनकर कट्टोने कहा—

"यह क्या बात है ? छुट्टियाँ खतम हो गई हैं तो जाओ। ऐसे क्यों होते हो?"

सत्यधनने सँभलनेका यत्न करके कहा—

"कहाँ !—कैसा भी तो नहीं हो रहा !"

"तो कब जाओगे ?—कल ?"

कल ही चल देना पड़ेगा, सो तो न सोचा था। पर अब देखा, नहीं भी कैसे करें। बोले—हाँ।

"किस वक्त ? सबेरे या शामको ?"

"तीसरे पहर।"

"अच्छा, मैं जब तक न आऊँ तब तक मत जाना। कहो, नहीं।"

"नहीं।"

कट्टो फिर चली गई और मास्टर-साहब पड़ गये। कट्टोका ध्यान आने लगा। सोचते सोचते, प्रेम तो क्या कहें, पर कट्टोपर रह रह कर करुणा उठ आती थी। वह कैसे अपने वर्तमानमें मग्न है जब कि भविष्य शून्य, निर्जन और अँधेरा है। जब इस भविष्यमें कट्टो पहुँचेगी, तो उसका क्या हाल होगा ? पर, देखो, कैसी लड़की है। इसकी चिन्ता भी उसे छू नहीं गई। क्या कुछ हो सकता है कि यह भविष्य उलट जाय ? क्या वह जीवनके अंतिम दिन तक इसी तरह उनसे पढ़ने आती नहीं रह सकती ? उसकी खातिर वह खुद इसी तरहके बिन ब्याहे मास्टर बने रह सकें तो कैसा ? लेकिन···कल तो जाना है !

क्यों जाना है ? नहीं जाना। नहीं जाते। होने दो जो हो, भागकर क्यों जायँ ?

तभी डाकिया डाक दे गया। बिहारीकी भी चिट्ठी आई। वह फेल हो गया। उसके बाबूजी परिवारके साथ काश्मीर जा रहे हैं। बहुत जोर दे रहे हैं—तुम चलो। चलना पड़ेगा। टाल नहीं सकोगे। टालोगे तो कसम। गरिमाका भारी अनुरोध है। क्या उसकी भी रक्षा नहीं करोगे ? अमुक दिन जा रहे हैं, उससे पहले ही मिल जाओ।

यह चिट्ठी इसी वक्त क्यों आकर पहुँची ? क्या भाग्यके इशारेपर ? ऐसा है तो यही सही।···लो, कट्टो, मैं सचमुच चलता हूँ।

बिहारीको चिट्ठी लिख दी गई। अगले दिन सवेरा हुआ, दो पहर भी टल गई। चल देनेका वक्त अब हुआ ही चाहता है,—पर कट्टो नहीं आई ! भीतर ही भीतर उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहे थे,—न आई तो जी मसोसने लगा। लेकिन सोचा, मुझसे तो पक्की वही है, फिर मैं ही क्यों कच्चा बना रहूँ ? हठात् सूझा—आये न आये, वक्तसे थोड़ा पहले ही चल दो।

इधर कट्टोको बहुत-सा काम करना था। पहले तो बहुत-सा रोना था, क्योंकि भीतरसे जीको ऐंठता हुआ जो क्षोभ उठा है, उसे बहाये बिना वह और कुछ भी नहीं कर सकती। फिर एक तकिया बनाना था। अबके एक तकिया बनाकर मास्टर साहबको देगी। काम छोटा-मोटा है नहीं, फिर बड़े यत्नसे किया जा रहा है। दोपहर बीत रही है तो क्या, यह भी अब खतम हुआ। मेरे बगैर वह जा तो सकते नहीं, वह निश्चिन्त है और एक मोनोग्राम पर झट झट सुई फेर रही है। उस मोनोग्रामका भी इतिहास है। पर उस इतिहासको सुनायगी तो देर हो जायगी। और मास्टर साहब कहीं चले न जायँ!

काम खतम हुआ। तकियेकी तह करके, एक कागजमें लपेटकर, कट्टो उछलते मनसे चली। घर पहुँची, पर मास्टर साहब कहाँ?

यह क्या हो गया? उसकी जबर्दस्ती के दिन क्या बीत गये?—जरा सी बात भी अब उसकी नहीं रखी गई? अभी तो आ रही थी, ठहर जाते तो क्या होता? वह रोई नहीं, सुन्न हो गई।

इधर मास्टर साहबकी साहित्यिकताने बीचमें दखल दे डाला था। होना है वह तो होना ही है, पर कडुआपन क्यों रहे? हँसी खुशी सब क्यों न हो जाय? सोचा— ताँगे पर बिस्तर पहुँचा आयें, आप घरसे जरा दूर दुबके खड़े रहें और जब कट्टो सोचमें मर रही हो, तब परमात्माकी विभूतिकी तरह आविर्भूत हो जायें।

कट्टो लकड़ीके ठूँठकी नाईं काठ-मारी खड़ी थी। यह कैसी आवाज आई—'कट्टो! और उसके साथ हँसीका ठहाका!'

विद्युत्की तरह क्षण भरमें जीवनकी चुहल कीलहर उसके सारे शरीर में फैल गई।

रोमांच हो आया, शरीर उछलने लगा—

"तुम बड़े दुष्ट हो!"

"यह कागजमें क्या है?"

"नहीं दिखाती, नहीं देती।"

"मैं भी देखूँ कैसे नहीं दिखाती, कैसे नहीं देती?"

"मुझसे लड़ोगे? बड़े अर्जुन हो!—लो।' देकर वह तो घरके भीतर भाग गई।

खोल-खालकर देखा। ओहो, बड़ी कारीगरीका काम है! और यह!—

१२

मनमें एक बात उठी और गिरी, उठी और गिरी। बार बार गिराआ गया, लेकिन फिर-फिर वह उठ आती है।

कट्टोका शून्य, नष्ट भविष्य आँखोंके सामनेसे हटकर नहीं जाता। कैसा वह हा-हा-कारसे भरा हुआ है! और वह?—आगे आते विलासको आमंत्रण दे रहा है।

एक बार फिर बुलाकर चेष्टा कर देखें। बुलाया—वह आई।

साँझ गाढ़ी होती जा रही है। प्रकाश मटमैला हो चला है। कमरेमें सूनी घड़ियाँ संध्याके अँधियारेमें डोलती डोलती मानों ठहर गई हैं। सत्य एक कुर्सीपर बैठे हैं। वह भी जैसे जड़ जगत्के ही पदार्थ हैं, ऐसे निश्चेष्ट और निस्पंद बैठे हैं।

वायु जैसे प्रविष्ट हो ऐसे चुपचुपाते निरपेक्ष भावसे कट्टोने वहाँ प्रवेश किया। आकर खड़ी हो गई।

तब उठकर सत्यने कमरेका एक झरोखा खोल दिया। अस्तोन्मुख सूर्यकी एक अरुण आभा कट्टोके चेहरेको उजला कर गई। आसपासकी और चीजों-को देखते कट्टोका वह चेहरा जगमगाता दीखने लगा।

सत्यने देखा,—आँखें आँसुओंसे खूब धोई गई हैं, और फूल आई हैं। जैसे फूली-फूली धुली कमलकी दो लाल पँखुड़ियाँ हों। लेकिन उनके सारे भेद और सारे स्नेहको पलकें मज़बूतीसे ढँके हुए हैं। सत्यकी दृष्टि उन झँपते-हुए कपाटोंतक पहुँचती है, भीतर नहीं पहुँच पाती, और लौट आती है। आज सत्य इनके भेदको प्राप्तकर अपने हृदयके भीतर छिपा लेना चाहता है। कोई उसे नहीं देख पायेगा।

आज यह अ-मानव मूर्ति, इस अँधेरे वातावरणमें, मानो सत्यकी आत्मा-को प्रकाश दिखलानेके लिए आई है।

मूर्तिने मुँह ऊपरको उठाया। तभी, जैसे बादल सामनेसे फट गया हो, एक तेज़ सफ़ेद चमकती हुई किरण भरपूर उस उठे हुए मुखपर पड़ी।

सत्यने एक निगाह देखा और सहम गया। यह तो कट्टोका मुँह नहीं है,—कुछ और ही है। चंचलतासे नहीं, पुष्ठ गांभीर्यसे भरा बालोचित औत्सुक्यकी जगह स्नेहाभिषिक्त प्रणयाकांक्षासे खिलता हुआ यह विह्वलता बरसाता चेहरा कट्टोका नहीं है!

उसी चेहरेने कहा—क्या है?

"कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी ?"

"मानूँगी। सब बात मानूँगी। बस यही नहीं।"

"यही नहीं ?—क्यों ?"

"क्यों?—सो मत पूछो। इसलिए कि मेरे भाग्यमें नहीं है। मैं अभागिन हूँ।"

"कट्टो,—देखो—"

कट्टोने देखा। भरपूर देखा।

सत्यपर उस समय एक अलौकिक-सी दीप्ति छा गई थी। कुछ भीतर हो गया है, जिसने इसकी देहको दिपा दिया है।

"कट्टो, मुझे देखो। भली भाँति देखो।—देखती हो ?"

"देखती हूँ।"

"जाने दो सब बात। मैंने तुम्हें बहुत दुःख पहुँचाया। अब उसका प्रतीकार करूँगा।"

"नहीं...नहीं..."

"देख लिया ?—अब बोलो, क्या कहती हो ? मुझे-मुझे-क्या कहती हो ?"

कुछ नहीं कहती। सूरज छिप गया है। बस, वह अँधेरेमें अपने मास्टर-के पैर टटोल लेना चाहती है।

पैरोंको पाकर कट्टोने अश्रु-जलसे उनका खूब ही अभिसिंचन किया।

———

१२

सत्य वहाँ ठहर न सके। उनके प्राणोंमें जो एक ज्वार उठा है,—मीठे दर्दका एक तूफ़ान-सा,—वह दीवारोंमेंसे घिरे उस कमरेमें झेला नहीं जा सकेगा। पैर आँसुओंसे धोये जा रहे हैं, और मन देहके बंधनमेंसे फट निकलकर बह रहना चाहता है। कमरेमेंसे निकल पड़े, सुध-बुध जैसे खो गई, पता नहीं कहाँ जाकर क्या करेंगे ? पास ही गंगाकी नहर बहती है। वहीं पहुँचे। ऊपर चारों ओर बिना सीमाका आकाश फैला है, जैसे माँका अंचल फैला हो। हवा हलकी हलकी बह रही है, मानों उसी माँकी ठंडी उसासें हैं। पासहीमें है वह गहन रोती जाती हुई जल-धारा, मानों अपने बच्चोंके छोटे सुखों और बड़े दुःखोंपर उसी माँके बहाए आसुओंकी धारा हो। माँके इस अंकमें आकर, जो अब सारी

सृष्टिको थपकियाँ दे-देकर सुला रहा है, और उनके ऊपर अपना तारों-से छिटका अंचल तानकर, निरंतर जागरूक, उनकी नींदकी चौकसी कर रहा है,—इस अंकमें आकर उसे कुछ चैन-सा मिला। आनंद-व्यथामें बोध प्राप्त हुआ। उनकी सावधानता लौट आई। मालूम हुआ, अब वह नींद चाहते हैं। जीवनके चूडांत उत्कर्षपरसे खिसक आये हैं, तो थकान हो आई है। घर आकर गाढ़ी नींदमें सो रहे।

* * * *

इधर कट्टो सौभाग्यके पहाड़के नीचे दबकर अचेतन-सी हो गई। जिसके पास तक स्वप्नमें भी पहुँचनेकी हिम्मत नहीं हुई थी, वही सौभाग्य जब एकदम इस तरह सिरपर बरस पड़ा तो कट्टो विह्वल हुई और फिर बेसुध हो गई। सुध आई तो मास्टर साहब जा चुके थे, वह अकेली ईंटके फर्शको भिगोती हुई पड़ी थी। उठी, अंधेरा था, अंधेरेमें ही धोतीका किनारा माथेके आगेतक सरका लिया, और टटोलती टटोलती दर्वाजेकी ओर बढ़ी।

कहीं कोई देख न ले! इस सौभाग्यको किसीकी नज़र न लगने पावेगी। आज उसमें न जाने कहाँकी लाज समा गई है। धोतीके बाहर अपना अँगूठा दिख जाता है तो सिहर उठती है, सिमट कर वहीं बैठ जानेको जी होता है। आज वह अपने सौभाग्यको साथ लेकर, मन होता है, कहीं गड़कर सो जाय कि फिर उठे ही नहीं, कहीं दुबक जाय कि फिर दीखे ही नहीं। सिमटी-सिमटाई सहमी-सहमी अचक-से घरमें घुसी और बत्ती जलाकर खाटपर बैठ गई।

रात-भर नींद नहीं आई। उसने भी व्यर्थ चेष्टा नहीं की। सारी रात न जाने कहाँ कहाँ उड़ती रही, धरतीपर तो एक क्षण भी टिककर ठहर सकी नहीं।

ओहो, आज उसका छोटा-सा मन फूलकर कैसा हो गया है, मानों सारे विश्वको अपने उछाहसे और अपने प्रणयसे प्लावित कर देगा!

सारी रात जगकर उसने एक बात तय की। कल पर्वीके मेलेमें वह जरूर जायगी। बहुत जरूरी तौर पर उसे कुछ चीज़ें खरीद लानी हैं। मँगा तो सकती नहीं, पता जो चल जायगा!

बारह-एक बजेसे इस बातकी टोहमें है, कि कोई पर्वी जानेवाला जगे और यह अपने जानेकी विधि ठीक कर ले।

क्या लायेगी?—दो चूड़ियाँ लाल, एक बिंदी-टिकियोंकी डिबिया, एक... उहँ! वह कैसे बताये? याद नहीं।...लाज आती है।...कल देखा जायगा।

और बात देखो। कैसी गंगाकी पर्वी आई है,—ठीक जब कि उसके भी जीवनका पर्व अचानक ही आ पहुँचा है। उसके मनमें संदेह नहीं, यह इस पर्वीका ही प्रसाद है।

आखिर रात कटी और औरतोंकी तैयारियोंकी धूम सुन पड़ी। पड़ोसके अग्रवाल बनियोंके यहाँसे कई जा रही हैं,—उन्हींके साथ जाना उसने भी ठीक ठाक कर लिया।

———

१४

सत्य जागे तो नये लोकमें जागे। कल बीत गया, आज नया दिन आया है। यह नया फटता हुआ दिन, रोजके नित्य-नियमित कार्य और आजके विशेष विशिष्ट कार्य आदि आदि उनके मस्तकपर कब्जा जमा बैठे हैं। कल शामकी घटना किसी भूले कोनेमें पड़ गई है। कल कुछ हो तो गया है, पर वह उनके सामने धुँधला-सा है। अभी अवकाश नहीं है कि वह उसे स्पष्ट करके देखें। और कामोंकी भीड़ भी तो है जिसे निपटाना है।

काम खतम होते जा रहे हैं और वह नये नये पैदा करते जा रहे हैं। बात यह है कि कलकी घटनाकी स्मृति, जो और सब बातोंको ठेल-ठालकर अपने आप सबसे आगे आ खड़ा होना चाहती है,—उसे सामने पाने और सामने लानेसे सत्य डरते हैं। ज़बरदस्तीकी व्यस्तता ज्यादे नहीं टिक सकती। खाना खाकर अपने कमरेमें आये, तो कलकी घटनाकी एक एक बात उठकर हठात् उनके सामने आ खड़ी होने लगी। सबको एक बार देख गये, कुछ समझ नहीं पाये कि यह सब क्या और कैसे हुआ, और कुछ कुछ अपनेपर शर्माये। उन्हें उसकी वास्तविकतापर संदेह होने लगा।

यह क्या हुआ? बात तो बिहारीकी करने चले थे। सो तो न हुआ, पर मैं कैसे सामने पड़ गया? बिहारी क्या सोचेगा?... आखिर मैंने क्या कहा? यही कि वह मुझे स्वीकार करती है या नहीं? वह रो पड़ी, स्वीकार करती है। पर उसने ऐसा कहा तो नहीं!... तो क्या मैं उसे अपनाऊँगा? क्या अपनाना होगा?

सोचकर देखा, बात कुछ ऐसीही-सी प्रतीत होती है।

तब बहुत-सी बातें बढ़-बढ़कर विरोधमें खड़ी होने लगीं। बाबूजी, गरिमा !... बाबूजी भी कुछ नहीं; और गरिमा !—गरिमा भी, खैर, देखा जायगा। लेकिन—लेकिन—?

इस बहुत बड़े 'लेकिन' में कई बातें थीं,–यह कैसी अजीब-सी बात होगी ?– लोग क्या कहेंगे ? बिरादरी और गाँवमें क्या हैसियत रह जायगी ?– यह सब होगा कैसे ? और —कट्टोकी माँ !—फिर, फिर, फिर मेरी माँ !

यहाँ वह बिलकुल रुक गया। यहाँ मानों ऐसा प्रतिबंध मिला जिसके आगे गति नहीं, जिसे लाँघ सकता ही नहीं।

माँ यह कभी नहीं होने देगी। सुनेगी तो मर जायगी। थोड़ी-सी बातोंपर वह जिंदा रहती है ! लड़केको इतनी तो रस्सी दी, पर यह अधर्म नहीं होने देगी। रोकेगी तो कैसे—अगर मैं अड़ जाऊँ ?—पर जान ज़रूर दे देगी, इसमें शक नहीं। मौतसे जब वह कुछ वर्षोंके अन्तरपर ही रह गई है तो क्या मैं ही उसकी बची-खुची जिन्दगीके ये बरस छीन लूँ और उसे अपने ही हाथसे मौतके मुँहमें ढकेल दूँ?

पर...पर कल क्या हो गया है, और...कट्टो!

इसपर उसे ध्यान हुआ कि उसे सुबहसे देखा नहीं। अभी जाकर वह कट्टोसे सब बातें साफ कर लेगा। कट्टोके घरपर जाकर पुकारा—कट्टो !

कट्टोकी माँकी आवाज आई—कौन है ?

"मैं हूँ, अम्माँ।"

"आओ बेटा।"

भीतर पता चला, कट्टो गंगास्नानको गई है। सत्यने देखा माँ जिन्दगी-के दूसरे किनारेके पास आती जा रही है। न जाने कब यह माँ भी छिन जाय !

"बैठो, बेटा !...देखो, वह लड़की गंगा चली गई है। मुझमें अब कस रह नहीं गया, काम नहीं होता। हाथ काँपते हैं,—जिन्दगी-भर काम करते रहे हैं, अब काँपते हैं तो उनका क्या दोष ? लड़की नहीं जाती तो क्या था ? पर वह अपनी ही चलाती है। बार बार कह चुकी हूँ, देख ऐसे दुख देखेगी। दुनियासे नीचे होकर रहना अच्छा। मेरे पीछे तेरा कोई सहाई नहीं होगा। तब तू मेरी सीख याद करेगी। अब तो तेरी निमें चली जाती है। पर दुनियामें और माँ तेरे थोड़े ही बैठी है। इसपर वह रोने लगती है ! कहती है, अम्माँ, लूँ ऐसा मत कह ... मैं तेरे ... बहुत थोड़े ... जीऊँगी।

तेरे सामने तो मैं अपनी चला लूँ, फिर चलानेको कब मिलेगा ! ...बेटा, वह अजीब लड़की है। फिर फूट-फूटकर रोने लगती है। मेरे पैरोंमें सिर रख देती है, कहती है, इस सिरमें मेरे एक ठोकर तो दे, माँ, मैं ठीक हो जाऊँगी। बेटा, मैं उसे दोष नहीं देती। अब दस दिनसे तो मैंने काम छुआ नहीं, वही सब करती थी। नेक आलस नहीं, नेक कलेस नहीं। फिर ऊपरसे मेरी टहल। ये उसके कामके दिन हैं, बेटा ?—और बच्चीं इतनी पढ़ती हैं, खेलती हैं और खाती हैं। पर इन बातोंमें क्या ? काम ऐसी मुस्तैदीसे करती है, बेटा, कि मैं क्या कहूँ। किसी घरमें होती तो रानी ही होती। पर रोयेसे क्या ? जो लिखा था, सो हुआ। जो लिखा था सो भुगता। बेटा, मैं उसे बिलकुल दोस नहीं देती। गंगा गई है, चलो सुस्थ हो आयगी। इतने काममें नेक बिसराम भी तो चाहिए। आयगी, तो फिर जुट जायगी। बेटा, एक बात कहूँ ? कहना बिरथा तो है ही, पर कहे बिना रहा नहीं जाता। बेटा, वह तेरी बड़ी तारीफ़ करती है। कहती अघाती नहीं। सुपनेमें भी उससे वही सुन लो। बेटा, बेटा, देख, मेरे पीछे उसकी खबरदारी रखियो। मैं भी तेरी माँ ही सरीखी हूँ। तू नहीं होता तो...तो...मैं...उसे जहर ही देकर जाती। दुनिया ऐसी बुरी है, बेटा कि क्या कहा जाय। तेरे जैसे यहाँ बिरले होते हैं,—रतन होते हैं। उनपर ही यह टिकी है, नहीं तो डूब जाती। तेरे-में ही मुझे धीरज है।"

विपदाकी यह कहानी सत्य नतमस्तक हो कर्तव्यसे विमुख होते हुए अपने मनके लिए उपदेश-मन्त्रके रूपमें स्वीकार कर रहा था। अपनी अकेली बेटीको, जो विधवा है और बच्ची है,—इस चूसनेकी घात लगाये बैठी दुनियामें अकेले छोड़ जानेकी तैयारी करती हुई दुखिया माँके कलेजेसे निकला यह दर्द सत्यने वरदानके रूपमें स्वीकार किया। प्रार्थना की, परमात्मा उसे इसके योग्य बनाये। प्रार्थना की कि उसे अपने संकल्पमें स्थिरता और सामर्थ्य दे। जिस बातको उठानेके ख्यालसे यहाँ आया था, उसे बहा दिया।

माँने फिर कहा—अरे सत्य, तेरा ब्याह कब होगा ? सुनते हैं, लड़की खूब पढ़ लिख गई है। वह तो कह रहे हैं, पर तू ही मना कर रहा है। क्यों रे, यह क्यों ?

खीरके भोजनमें यह नोनकी अनी मुँह बिगाड़ गई। कड़वापन फैल गया। उसी कड़वी मनस्थितिमें कड़वाहटके साथ कहा—

"अम्माँ, उसने फिर यहाँ न आने दिया तो ?"

"अरे, कैसी बात करता है रे !"

"अम्माँ, मैं तो गाँवका हूँ, वह शहरकी है।"

"हिश्-श्-त !"

"अम्मा, मैं तो अभी करता नहीं। करूँगा इसका भी क्या पता ?"

"मैं तो अपने लिए कहती हूँ रे। कट्टो,-एक बात कहूँ, तैंने 'कट्टो' नाम बड़ा अच्छा रक्खा है, वह कट्टो ही है,— कट्टोको एक जीजी मिल जायगी। तू सदा उसे पढ़ानेको थोड़े ही बैठा रहेगा, अपने कामपर लगेगा। बस, वह इसे पढ़ाया करेगी, शऊर सिखायगी और यह उसकी टहल करेगी। मैं उसे सब समझा जाऊँगी। नेक बेअदबी करे, आनाकानी करे, उसे काट डालना। पर रखना उसे अच्छी तरह।"

"देखो, अम्माँ, क्या होता है। जो होगा सो होगा। और सब अच्छा ही होगा। पर, अम्माँ, कहता हूँ, तुम्हारी कट्टोको कुछ मुश्किल नहीं पड़ने दूँगा।"

"नहीं। कट्टो तब तक खुश नहीं होगी जब तक तू ब्याह न करेगा। वह अभीसे कह रही है,—जीजी आयगी तो वह उससे पढ़ा करेगी और उसकी सेवकाई करेगी।"

"अम्माँ...।"

वह इस बातका प्रतिकार करना चाहता है। क्या वह नहीं जानता कि इससे भी बड़ी खुशी उसके भाग्यमें हो सकती है। क्या वह कट्टोको नहीं जानता कि उसकी बड़ी खुशी किस बातमें होगी ? और क्या वह उसीके लिए नहीं तैयार हो रहा है ? पर उसने कहा, "अम्माँ"—और वह रुक गया। जैसे किसीने जुबानको पकड़ लिया, 'यह क्या कहता है ?--अम्माँ इस बातपर क्या सोचेंगी ?'

लेकिन असमाप्त बातका ध्यानकर वह अपनेसे प्रसन्न हुआ। उसीके आवेशमें अटकी बातको खतम करते हुए कुछ हँसकर बोला—

"अम्माँ,... कट्टोकी जीजी आई, और उसने कट्टोको प्यार नहीं किया तो मैं उसका सिर तोड़ दूँगा।"

"और कट्टोने गड़बड़ी की तो उसका भी सिर तोड़ देना, मैं कहे देती हूँ। कहीं भी हुई, मैं इससे बड़ी खुश हूँगी।"

माकी बातोंसे उसने बहुत कुछ दृढ़ता पा ली और स्वस्थचित्तता भी। तब कुछ देर और ठहरकर और माँको हँसा-हँसूकर वह घर आया।

१५

पुरुष बनाता है, विधाता बिगाड़ देता है,—अँग्रेजीकी एक कहावत है। संशोधनकर यह भी किया जा सकता है,—पुरुष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी कहावतमें कम तथ्य या कम रस नहीं रहता। बात वास्तवमें यह है कि पुरुष कम बनाता या बिगाड़ता है। इसी तरह पुरुष कुछ नहीं बनाता-बिगाड़ता, जो कुछ बनाती और बिगाड़ती है, स्त्री ही। स्त्री ही व्यक्तिको बनाती है, घरको—कुटुम्बको बनाती है; जाति और देशको भी, मैं कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है। फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी; हराव भी और उजाड़ भी, दूध भी और खून भी; रोटी भी और स्कीमें भी और फिर आपकी मरम्मत और श्रेष्ठता भी,—सब कुछ स्त्री ही बनाती हैं। धर्म स्त्रीपर टिका है, सभ्यता स्त्रीपर निर्भर है, और फैशनकी जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्दमें कहो,—दुनिया स्त्रीपर टिकी है। जो आँखोंसे देखते हैं, चुपचाप इस तथ्यको स्वीकार कर, दबके बैठे रहते हैं, ज्यादे चूँ नहीं करते। जिनके आँखें ही नहीं वह मानें या न मानें, हमारी बलासे।

सत्य कट्टो और गरिमाके बीचमें इधरसे उधर टकरा रहा है। अभी कुछ स्थिर कर पाया था कि कट्टोकी माँने ढा दिया, वहाँसे कुछ स्थिर करके चला तो यहाँ अपनी माँसे मुकाबला हुआ।

खाना खिलाते-खिलाते माँने कहा—सत्य ब्याह अब और नहीं टल सकता।

सत्यने कुछ गुनगुन किया।

"नहीं। बहुत देखा। अब तुम्हे मेरी माननी पड़ेगी।"

"अम्माँ, मैं......।"

"मैं--मैं कुछ नहीं। जो कह दिया, बस।"

"मैं नहीं कर सकना; माँ, तुम जानती नहीं।"

"क्या नहीं जानती?"

"कुछ नहीं, लेकिन...."

"क्या लड़कीमें कुछ है ?"

"नहीं नहीं, माँ । लेकिन..."

"फिर वही । मैं जानती हूँ, लड़की बड़ी अच्छी है । तू भी उसे चाहता है । मैं और कुछ नहीं सुन सकती ।"

"माँ, मैं नहीं कर सकता ।"

"नहीं कर सकता ! क्यों ?—सुनूँ तो ।"

"मैं...मैं..."

"कुछ बोलता है नहीं,—कहता है, नहीं कर सकता !"

"माँ,...मैं..."

"—नहीं करता तो जी चाहा कर । यह माँ भी तेरी ज्यादे नहीं बैठी रहेगी ।"

फिर उमड़न आई । माँका मुँह बिगड़ा, हिला । सत्य रोना नहीं झेल सकेगा । बोला—माँ,...।

"मैंने क्या किया जो अपनी बहूका मुँह नहीं देखा । हाय, ऐसे ही मर जाऊँगी !"

अब मा फूट पड़ी । सत्य चलनेको हुआ,—ठहरा कैसे रह सकता था ? खाना छोड़ उठा, हाथ धोये,—तब माँने एक चिट्ठी जो बराबर उनके हाथोंमें थी सत्यके पास फैंक दी ।

सत्यने देखा, बिहारीकी चिट्ठी है । माँके नाम है । बिहारी दो-एक रोज़में यहाँ पहुँच जायगा । बाबूजी शादीका सब कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहते हैं । इसी लिए बिहारी आ रहा है ।

यह जानकर सत्यपर बर्फ़-सा पड़ गया । बिहारीसे किस मुँहसे मिलेगा ! और शादीका कैसे क्या होगा ! सिरकी पीड़ाको हाथोंमें लेकर खाटपर पड़ रहा और सो गया ।

———

१६

कट्टो गंगाजीसे बड़ी बड़ी चीज़ें लेकर लौट आई है । अम्माँके पास आई— "अम्माँ, मैं गंगा चली गई, तुम बिगड़ी तो नहीं ? तकलीफ़ तो हुई होगी । पर अम्माँ, पर्वी अबके ज़रूर नहाना चाहती थी । अब कहीं नहीं जाऊँगी ।"

"बेटा, कुछ नहीं। पीछे तेरे मास्टर आये थे। मैंने तेरी बात कह दी।"

"क्या अम्माँ?"

"यही कि तेरी जीजी झटपट ले आयें, तू अब उसीसे पढ़ना चाहती है।"

ओहो, एक भेदकी बात कट्टोके पास है! अम्माँ जानती भी नहीं। इस विशिष्ट-अधिकारपर कट्टो गर्वसे भर रही है। बोली—

"अम्माँ, तो उन्होंने क्या कहा?"

"कहा क्या?—तेरा मास्टर अजीब है, कट्टो। बोला, देखा जायगा, अभी जल्दी काहेकी है। कट्टो, क्या पता वह शायद ऐसा ही रह जाय!"

हाँ, कट्टोका मास्टर अजीब है पर यह माँ क्या जाने उसका अजीबपना!

"कट्टो, मेरी बातपर वह कहता था कि कभी तेरी जीजी आई भी और उसने तुझे पढ़ानेमें यह वह किया तो सिर फोड़ दूँगा।"

कट्टो बहुत सुन चुकी, आगे और कुछ सुनना नहीं चाहती। पूछा—

"अम्माँ, आज क्या राँधूँ?—चावल?"

"जो चाहे।"

वह भाग गई। भागकर चौकेमें नहीं गई, अपने कमरेमें आई। वहाँ एक तेलसे चिकने हो रहे आलेमें अभी अभी ताज़ी ताज़ी बिसातीसे खरीदी एक टिकुलीकी डिबिया, एक छोटा-सा दर्पन, एक राधा-किसनकी तस्वीर,—ऐसी ऊट-पटाँग चीजें सजाकर रख दी हैं। वहाँ आकर, उस छोटेसे दर्पनको लेकर, दोनों भौंहोंके बीचोंबीच, जरा ऊपरको, सींकसे उस डिबियोंमेंसे, बड़ी नन्हींसी एक टिकुली लगा ली। देखती रही,—कैसी यह लाल लाल बिन्दी काली पड़ती जा रही है!

तभी दर्पनको फेंक देना पड़ा और धोतीके छोरको माथेके एकदम आगे खींचकर, भागकर, कमरेके एक कोनेमें सिमट बैठ गई। हाय! लाज आती है!

"मैं कैसी लगती हूँ,—कैसी लगूँगी? मास्टर देखेंगे तो क्या सोचेंगे?—ऊँह. देखेंगे ही नहीं। मैं जाऊँगी ही नहीं।...फिर याद जो करेंगे!—करें, मेरा क्या?...मैं तो नहीं जाऊँगी।...कैसे जाऊँगी?"

तभी एक बात उठी।

"मैं गई ही—और उन्होंने 'कट्टो' कह दिया तो?—वह ऐसे ही हैं,

समझते हैं नहीं, कुछ भी कह देंगे।...उन्होंने कट्टो कहा, तो,—तो मेरा तो मरन हो जायगा।"

इस वहकमें सोचते सोचते तीव्रता आ गई। तभी वह कोनेमेंसे उठ आई। हाथके एक झटकेसे धोतीका छोर पीछे जा पड़ा, सिर उघड़ गया। उघड़ा रहो,—सो क्या हुआ। दावात क़लम कागज ले आई और खाटपर बैठकर लिखने लगी। बिंदी वहीं माथेपर बैठी बैठी ऊपर उघड़े सिरको देखकर और नीचे इस लिखी जाती हुई चिट्ठीको देखकर चुप चुप कैसी लाल लाल हँसी हँस रही है।

———

१७

सत्य सोकर उठा तो कुछ समझ नहीं पा रहा है। पास ही वह बिहारीकी चिट्ठी सिकुड़ी सिकुड़ाई पड़ी है। उसने अनमनाये मनसे उसे उठाकर पढ़ा। जैसे पहली ही बार पढ़ा हो,—वह चौंक उठा।

क्या होगा? वह क्या करे? माको मर जाने दूँ?...बिहारीसे क्या कहूँगा? उसे क्या सफ़ाई दे सकूँगा? और वह मनमें क्या समझेगा?

यह कट्टोने बीचमें आकर क्या गड़बड़ मचा दी है! वह कौन है?—मेरी क्या गलती है? मुझे उसका क्या देना है?—फिर वह मुझे क्यों इस तरह तंग करती है?

तभी किसीने चुपकेसे कानमें कहा—

"वह कहाँ तंग करती है?—इतने दिनसे तुम्हारे पास आई तक तो नहीं। वह तो तुमसे कुछ कहती नहीं। अपने चुपचाप दिन काट रही है, वैसे ही काट ले जायगी।"

सत्य बड़े झमेलेमें है। बड़े संकटमें है। रह रहकर सोचता है, मैं क्यों व्यर्थ अपने ऊपर ज्यादा जिम्मा लेकर विधाताके काममें अड़चन डालूँ? होने दो जो हो, मैं कुछ नहीं बोलता। लेकिन रह-रहकर मानस क्षेत्रमें आँसुओंसे पद-प्रक्षालन करती हुई उठ आती है वह कट्टो!—जो कहती है, 'मैं कुछ नहीं कहती। मैं किस लायक़ हूँ? जो चाहे सो करो।'

यह गड़बड़ उससे खत्म होती मालूम नहीं होती। वह क्या करे? सोचा, अपनेको निश्चेष्ट,—ढीला छोड़ दूँ। जो होगा, हो जायगा।

लेकिन इस तरह देखा, निश्चेष्टतासे कुछ नहीं होगा। यही होगा कि बाबूजी जीत जायेंगे, कट्टो हार जायगी। जो हारता रहा है हारेगा, जो जीतता रहा है वह जीतेगा। और कट्टो इस हारको ही प्राण-प्रणसे स्वीकार कर दूसरेकी जीतको खट्टा बना देगी। कट्टो तो जीवनके इस खेलमें हारका ही दाँव आगे बढ़ाकर चलती है, इसलिए जो मिलता है उसीमें उसकी जीत है।

सोचते सोचते उसका सिर मानों धुन डाला गया है। एक ओर अपनी बातकी रक्षा है और विचारी कट्टोकी रक्षा है। दूसरी ओर अपनी हैसियतकी, अपनी माँकी, अपने सब कुछकी रक्षाका ख्याल है। और कट्टो क्या सचमुच आवश्यक रूपमें उसके ही द्वारा रक्षणीय है?

कट्टो, मैं अपनी माँके पास जाता हूँ। पैरोंमें सिर रखकर कहूँगा, 'माँ, बहुत दुःख दिया। अब और दुःख न दूँगा। आज्ञा करो।' यह सोचकर अपनी माँके पास जानेके लिए वह संकल्प कमानेमें लगा।

तभी मुँहपर नाक और धूलकी लेही लेपेटे अग्रवालोंके घरकी खीरा आ खड़ी हुई।

"क्यों, खीरा बेटी, क्या है?,"

"ये कागद," कहकर उसने हाथकी मुट्ठी खोल दी।

"किन्ने दिया?..."

"उन्ने ही..." कहकर वह अपना बताशेका इनाम लेने चली गई। बुरी तरह गुड़ीमुड़ी हुआ वह बदामी कागज खुला—

"मेरे...मेरी एक बात है। उड़ाना नहीं, बुरा होगा। मुझे अबसे कट्टो मत कहना। लाज आती है। ब्याह हो जाय तब चाहे जो कुछ कहना। उससे पहले नहीं,—तुम्हें मेरी क़सम। —कट्टो।"

"पीछे तुम अम्माँके पास गये, मुझे पता चल गया है। क्यों गये? मेरे कारन सोचमें मत पड़ना। —कट्टो।"

खत पढ़कर उनका माँके पास जाना रुक गया।

———

१८

बिहारीको घरपर चैन नहीं पड़ा। भीतर जो कट्टोका कल्पनाके सहारे बनाया हुआ एक चित्र बैठ गया है, वह दिलको गुदगुदाता रहता है। इसीलिए पिताको वह पत्र लिखानेके लिए उकसाया और इस तरह गाँव आनेका बहाना प्राप्त किया। बाबूजी भी अब सचमुच बहुत बाट देखते बैठना नहीं चाहते। वह सत्यको खो देनेको तैयार हैं, पर इस वर्षसे आगे गरिमाका ब्याह टालनेको तैयार नहीं।

पिताकी इन सब इच्छाओंको समझकर और कैसे क्या करना होगा, इस सबका भी खाका मनमें बिठाकर बिहारी सत्यके गाँवके लिए रवाना हुआ।

कट्टो कैसे मिलेगी, कैसी होगी? इन सब संभावनाओंपर उसकी कल्पना दौड़ रही है और उसे चुटकियाँ ले रही है। वह अपनी कल्पनाओंको बहकाना चाहता है, पर वे न अखबारमें, न किताबमें और न रेलके बाहरके खेत और जंगलके दृश्योंमें ही अटक पाती हैं,–वे तो छूट छूट कर वहीं गाँवकी कट्टोके पास भाग निकलती हैं।

वह गाँवमें कभी नहीं आया है। तो भी उसे दिक्कत न होगी,—वह सब ठीक-ठाक कर चुका है।

कट्टो पानी भर रही हो तो—? तो मुझे क्या समझेगी?—क्या करेगी?

ओह! अगर कहीं मास्टर साहबके पास पढ़ती हुई मिली तो बड़ा मजा है।

...भई, बड़ी अच्छी बात होगी। मैं गाँवमें रहने लगूँगा। एक झोंपड़ी बनवा लूँगा। शहरमें रहना कुछ नहीं,—तमाम दुनियाकी आफत! उसे तो मैं शहरी कभी नहीं बनाऊँगा। देखी तो हैं शहरकीं,—मानों आसमानपर चढ़ जायेंगीं!...नहीं जी, गाँवमें रहेंगे हम,—मैं और कट्टो।...बाबूजी कहेंगे तो कहो,—मुझे नहीं पसंद यह वकालत। मनहूसियत छा जाती है। ज़िन्दगीका मजा कुछ रहता ही नहीं। पैसा, अदालत, मुवक्किल और झूठ और फ़रेब, और...। नहीं बढ़िया किसान बनकर रहूँगा। फिर अपनी अँग्रेज़ी डिग्रीको, चोगों और सनदोंको खूँटीपर लटकाकर कहूँगा,—लोगो, वह रही तुम्हारी वकालत और वह रही तुम्हारी अँग्रेज़ी! उन्हें हाथ जोड़ो, मुझे छोड़ दो। मुझे चुपचाप किसान बनकर रहने दो। कैसा मजा रहेगा! खुशीसे भरी और फ़िक्रसे खाली, मनुष्यतासे भरी और बनावटसे खाली—बड़ी सुन्दर

ज़िंदगी होगी वह । लोगोंसे कहूँगा,—सलामत रहें ये सनदें, इन्हें लटका रहने दो, (कभी कभी झाड़नसे उन्हें झाड़ भी दूँगा) पर मुझे तो मेरी किसानी भली, और मेरी गाय,—गाय एक जरूर रक्खूँगा और, और वह मेरी कट्टो!

इसी तरहकी बहकमें वह बेरोक बह चला । रेलमें बैठे बैठे इस तरह जो बग़ीचे उसने बनाये और क़िले खड़े किये, उन सबके बीचमें आ प्रतिष्ठित होती थी वही कट्टो !

तब वह सोचता था, बनी रहे यह तन्दुरुस्ती और यह शरीर, अपने झोंपड़ेमें मैं कट्टोको महारानी बनाकर रक्खूँगा । रुपया मुझे नहीं चाहिए । सब सत्यको दे दिया जाय तो ठीक । वह इसके क़ाबिल भी है । मैं तो ऐसा ही ठीक रहूँगा ।

गाँवमें आख़िर वह आया । लड़कियाँ राहमें मिलीं,—पर कट्टो तो कोई नहीं है । क्या वह उसके ताँगेको इस तरह देखती रह जाती ? न जाने क्यों उसे विश्वास है, कट्टोको पहचाननेमें भूल वह कभी कर ही नहीं सकता ।

सत्यके मकानपर पहुँचकर चिल्लाया—'मास्टर साहब !'

सत्य सो रहा है । अपनेसे निबट नहीं सकता तो सोना ही उसका काम रह जाता है ।

सत्यकी माँ आई । झिझकती हुई घूँघट आगे डालनेको तैयार । देखा, कोई सत्यका समवयस्क है,—बिहारी ही न हो !

"दिल्लीसे आ रहे हो भाई ?"

"हाँ जी ।" समझ गया वह माँजीके सामने है । झट-से पैर छुए ।

"मैं बिहारी हूँ ।"

"सो ही तो मैं समझी ।"

"सत्य दादा कहाँ हैं ?"

"ऊपर सो रहा है ।"

सामान रख-रखाकर कहा—माँजी, मैं ऊपर जाऊँ ?

"हाँ हाँ । वह ज़ीना है ।"

बिहारीको जल्दी है । कट्टोके कारण सत्यसे मिलनेकी जल्दी है । झट ऊपर पहुँच गया ।

सत्य सो रहा है । जगाये या न जगाये ? पाँच-सात मिनट बैठनेके बाद बिना जगाये उससे रहा न गया ।

"मास्टर साहब !"

मास्टर साहबको झकझोर उठाना पड़ा। उठे।

"बिहारी !—बिहारी तुम !"

बिहारीने कहा—हाँ हाँ, अभी टपक पड़ रहा हूँ। घबड़ाओ नहीं, हौआ नहीं हूँ, सदेह बिहारी ही हूँ। यह प्रमाण लो।" कहकर, एक बार कंधा पकड़कर फिर झकझोर दिया।

मास्टर साहब अपने-पनमें आये।

"आओ, बैठो।"

"आया भी हूँ, और बैठा भी हूँ। अब आदमी बन चलो, सुना ? यों रोते-से मत बने रहो।"

दोनों फिर दो कुर्सियोंपर बैठ गये। बात शुरू होनेकी देर थी, बिहारी बोला—हाँ कट्टो .....।

मास्टर साहबने चिहुँककर कहा—कट्टो !.. ...

और उनकी दृष्टि उस दूर क्षितिजके ऊपर उड़ती हुई चीलपर जा पड़ी।

१६

जिस बातको कहना है उसको कब तक गलेमें अटकाये रक्खा जाय ? लेकिन कहनेमें बड़ी कठिनता होती है। जैसे आत्मग्लानिका घूँट जो उबककर मुँहमें आता है, उसे फिर गलेके नीचे उतार लेना पड़ता हो ! सत्य दोनोंके ही अपराधी हैं,—कट्टोके भी और बिहारीके भी। दोनोंको बढ़ाया, और अब दोनोंको खोकर आप बच निकले जा रहे हैं। तो भी सारी कहानी सच सच कह दी।

पर बिहारी मर्द है,—सच्चा बिहारी है। इतनी मेहनतसे अभी अभी जिस भविष्यके स्वर्गको खड़ा किया था, और जिसे अभी सजा ही रहा था, उसको सत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। और सत्य ही वह व्यक्ति है जिसने उसे उस भविष्यकी दागबेल डालनेको निमंत्रित किया था। लेकिन अभी तो उस भविष्यके चकनाचूर ढेरके पास खड़ा होकर वह सिर सीधा रखकर मुस्करा

ही देगा, पीछे फिर चाहे कितना ही रोये। वह अभी तक अपनेसे अलग खड़ी हुई निराशाके अँधेरेका छेदन कर यह भी देखता है कि सच पूछो तो इस जगतमें कहीं किसीपर भी दोष रखनेमें अर्थ नहीं है। लेकिन सत्य एक बात कहकर उससे डिग रहा है, यह उसकी समझमें नहीं आता। उसने कहा—

"चलो मेरा झगड़ा छोड़ो। लेकिन अब तुम क्या करोगे?"

"माँको मार नहीं सकूँगा।"

बिहारी जानता है कि उसकी बहिनका मामला है। पर बिहारी असमंजसको बहुत जल्दी काट फेंकता है। उसने अपने जीवनका आदर्श कुछ बहुत ही स्पष्ट और निर्णीत धारणाओंपर गढ़ रक्खा है। उसमें ज्यादे हेर-फेर और घुमाव-फिराव नहीं है। इसीलिए ऐसे मौकोंपर वह संकटमें नहीं पड़ता। इसीलिए वह सदा हलका हलका बना रह सकता है,—क्योंकि वास्तवमें वह खूब भारी है। उसके व्यक्तित्वका लंगर खूब गहराईमें बड़ी मजबूतीके साथ, एक निष्ठामें गड़ा हुआ है। इसलिए वह चाहे दुनियाके पानीपर कितना ही लहराता क्यों न रहे, Buoy की तरह, डिग नहीं सकता। एक ओर गरिमा और दूसरी ओर कट्टो,—इन दोनोंके बीच अपनी राह बूझते हुए सत्यको इसीलिए बिहारी ठीक निर्णय दे सकता है। बिहारीने कहा—

"कुछ भी कहो। मैं होता तो मैं अपनेको छल न सकता।"

"यह बात नहीं है, बिहारी। लेकिन....कुछ और ही बात।"

"मुझसे पूछते हो तुम? मैं तो यह कहूँगा कि तुम आत्म-प्रवंचन करते हो, और उसके साथ चलनेवाली जो आत्म-ग्लानि है, उसे अपनी माँ और बाबूजी और गरिमाकी ओट बैठकर बचा जाना चाहते हो। सो नहीं होगा, सत्य।"

"तुम अन्याय करते हो बिहारी।"

"ऐसा समझो, ऐसा ही सही। लेकिन, सत्य, तुम थोड़ा अन्याय नहीं कर रहे हो।"

"मैं बँधा हुआ हूँ।"

"वचनसे नहीं?"

"उससे भी ज्यादेसे,—कर्तव्यसे।"

"कर्तव्यसे?—ओहो! फिर तो आगे जुबान बंद। इस शब्दके आगे तो मैं घुटने टेककर बैठ जाता हूँ। जी तो कुछ और होता है, पर इस शब्दकी अद्भुत पवित्रताको यादकर हाथ ही जोड़ देने पड़ते हैं। अभी काली माईके

पंडोंसे कुछ कहूँ तो इसी थैलीका एक शब्द सुन पड़े—धर्म ! जहाँ धर्म और कर्तव्य बहुत सुन पड़ते हैं, वहाँ मुझे कानपर हाथ रखनेके अतिरिक्त कुछ काम नहीं रहता। सुना सत्य ?"

विहारीकी यह वक्तृता सत्य पचा नहीं सका। अब तक वह अपनेको बड़ा मानता था। लेकिन जब देखा कि विहारी विना प्रयास यह अंतर लाँघ सकता है तो यह अनुभव सत्यको रुचिकर न हुआ। कहा—

"विहारी, यह लेक्चर देना कबसे सीख गये ?"

"नहीं नहीं, माफ करो।...तो फिर क्या तुम निश्चयपर आ गये हो?" अभी निश्चयसे जरा दूर थे, पर विहारीके शब्दोंने मानों धक्का देकर उन्हें वहाँ पहुँचा दिया।

"हाँ, अपनी माँसे आज ही कह देना होगा। तुमको तो इससे प्रसन्न होना चाहिए।"

"हाँ, हाँ क्यों नहीं। मैं आया ही इसलिए हूँ। लेकिन एक बात बताओ, —कट्टोसे तुमने कह दिया है न?" "न..."

"न ?—कहा नहीं ? तुम बड़े सुस्त हो। जरा शंका थी, तभी यह बात उसे कह देनी थी। लेकिन अब न कहना, यह काम अब मुझे करना होगा। पर एक काम करोगे?" "बोलो..."

"एक बार कट्टोको बुलाना होगा, मेरा परिचय कराना होगा।"

२०

दोनों मित्र बैठे हैं, अपने अपने ध्यानमें हैं,—और प्रतीक्षामें हैं। कट्टो अब आना चाहती है। कट्टो आना चाहती है,—कहीं खटका न हो। समय मानों रुक गया है, हवा ठहर गई है। मित्रोंकी निकलती हुई साँस ही मानों वहाँ कमरेमें सचल वस्तु है।

कट्टो आई। छायाकी तरह, चलती हुई मूर्तिकी तरह।

हैं, य, कौन ! एकदम बहुत लम्बा घूँघट निकल आया और वह दर्वाजेके पास ही, इधर पीठ करके, दोहरी होती हुई खड़ी हो गई।

बिहारीके मनमें हुआ सत्यको शाप दे डाले।

सत्यके जीको जैसे कोई ऐंठकर निचोड़ने लगा।

सुन्न सन्नाटा रहा। किसीको बोल नहीं आया। तीनोंके मनसे न जाने क्या क्या निकलकर अलक्षित और अव्याहत रूपमें उस कमरेकी शून्यता-में व्याप्त हो गया। एक भारी त्रास सारे कमरेमें इन तीनोंहीके जीको घोटने लगा।

अब बिहारी जायगा। सत्यकी जीभ मानों जकड़ गई है,--वह मानों रो देगा, बोल नहीं सकेगा। ऐसे संकटमें बिहारी ही प्राण देगा। उसने कहा—

"भाभी!..."

सत्य काँप उठा। कहीं वह असी दयाकी भीख न माँग उठे!

कट्टो, अगर हिल सके तो किवाड़के पीछेवाली परछाहींमें समा जाय! 'भाभी!' इस शब्दके अर्थने मानों बिजलीकी तरह उसके शरीरमें कौंध कर उसे सुन्न कर डाला।

"भाभी!—यह नहीं होगा। मैं पर्दा नहीं करने दूँगा।" यह कहा और पास पहुँचकर दोनों हाथोंसे दो छोरोंको पकड़कर बिहारीने घूँघट उलट दिया।

ओः बिहारी, यह न करो, लाज करो, तरस खाओ। देखो, वह काँप रही है, मुड़ती जा रही है, सिंदूर-सी पड़ी जा रही है!—कहीं और कुछ न हो जाय!

बिहारीने देखा,—माथेपर नन्हीं-सी टिकुली है, बाल चिपटाकर सँवारे हुए हैं, हाथोंकी दो लाल चूड़ियाँ उझक उझक कर अपनेको दिखला देना चाहती हैं।

उसके जीमें उठा कि हाय, सत्य तू पशु है!

अब क्या सिंदूरिया यह रंग ठहरेगा, यह टिकुली क्या फिर लगेगी?--क्या यह गाँवकी लड़की दूसरी बार अपनेको ऐसा सँवारनेका अवसर पायेगी?

हाय, अगर बिहारी...? लेकिन...

"भाभी! ऐसे नहीं खड़ी रह सकोगी।...तुम्हारा नटखट बिहारी आया है। वह तुमको अपना परिचय देना चाहता है। चलो उसकी सुनो।"

कलाई पकड़कर उस मुर्झाती हुई बालाको निर्दयी बिहारी खंचेड़ ले चला। ले जाकर कुर्सीपर प्रस्थापित कर दिया।

अब खून उसमें दौड़ रहा है। गड़ तो कहीं पाई नहीं,--और अब अवसर निकल गया। अब हठात् वही दरख्तवाली कट्टो बने बिना उससे नहीं रहा

जायगा। वैसे यह अपनेको बिहारी कहनेवाला निर्दयी भी उसे क्या यों ही छोड़ देगा?

अब कट्टोकी गर्दन उठी। आँखें उठीं, फलीं, कोयोंमें जरा स्निग्धता आई। वही आँखें जिनमें छुना हुआ स्त्रीत्व भरा है।

"देखो अब मैं पराया नहीं हूँ। बताऊँ, मैं कौन हूँ, क्यों आया हूँ?" बिहारी उन आँखोंमें प्रोत्साहन पाकर बोलता ही रहा "बताऊँ?—इन तुम्हारे मास्टरजीपर कुछ रोजसे एक भूत आने लगा है!..."

ओंठ फैले, जहाँ अभी गुलाबी-सी चमक थी गालोंमें, वहाँ अब एक छोटा-सा गड्ढा पड़ गया। वह मुस्कराई।

"उस भूतका नाम है गुम-सुम। जिसपर चढ़ता है उसे गुम-सुम कर देता है। मैं भूत उतारनेमें खूब होशियार हूँ। बरसों मैं इनके साथ पढ़ा हूँ,—यह मेरी तारीफ़ जानते हैं। इस भूतकी बात जानकर फ़ौरन दौड़ आया हूँ। देखो भी भाभी, अब करता हूँ चेष्टा इनके भूत उतारनेकी।"

कट्टो हँसी—

"चुप क्यों बैठे हो जी!—नहीं तो यह शुरू करें उतारना तुम्हारा भूत!"

उनकी तो जीभ जैसे और भी ऐंठी जा रही है। बोलना चाहते हैं, पर जैसे वह जवाब दे रही है।

"ऐसे नहीं, देखो, एक काम करो। तुम उधर जाओ, मैं इधर खड़ा होता हूँ। एक-दो-तीन कहूँगा, तीनपर एक साथ मैं भी और तुम भी, इनकी बगलके ठीक बीचोंबीच बिन्दुपर गुदगुदी मचा दें। ठीक बीचों-बीच बिन्दुपर, इधर उधर नहीं; और ठीक तीनपर, आगे-पीछे नहीं!—नहीं तो गुम्मा-सुम्मा और चढ़ जायगा। समझती तो हो न?...ठीक..."

"हाँ हाँ, बिल्कुल ठीक लो, बिल्कुल..."

"लो बोलता हूँ। ए...क, दो...ओ...ओ,...देखो,...ठीक...हाँ... बोलता हूँ आगे। ...."

"यह क्या तुम लोग तमाशा बना रहे हो?" सत्य झल्लाया।

बिहारी बोला—देखा, भागा वह भूत, भागा!

"चुप रहो जी, शरारत बन्द करो।"

कट्टोकी हँसीकी फुहार उछली पड़ रही है।

बिहारीने कहा, "देखो, मैंने कहा था न ? पर यहाँ तो दवाके नामसे ही काम चल गया।"—

बिहारीपर डाँट पड़ी—बिहारी !......

कट्टोने कहा—अब तो भाग गया भूत। अब तो बोलो।

सत्य इधर झुका, बोला—कट्टो !...

कट्टो ! दूसरेके सामने यह !

बोली, "किसे कहते हो कट्टो ? कौन है कट्टो ? तुम्हें शऊर नहीं है,—कि कौन है, क्या है...! कट्टो कट्टो !"

कट्टोकी इस भड़कनपर बिहारीको हुआ कि यहाँसे छिपकर वह कहीं दूर जा सकता और रो लेता !

अपने साथ बहुत जोर लगाकर, "अच्छा, बिगड़ो मत। और कोई नाम भी तो नहीं मिलता—क्या कहूँ ?" सत्य आखिर बोला—

"कुछ भी कहो—हम नहीं जानते।"

"अच्छा......यह मेरे साथी हैं। मैंने एक रोज तुमसे जिक्र किया था,—यह वही हैं।"

बात खतम नहीं हो पाई थी कि कट्टोने बिगड़कर बिहारीसे कहा—

"तुम......"

तभी कुछ हो गया कि उसने फिर घूँघट आगे बढ़ा लिया—पहले जितना नहीं, जरा थोड़ा।

"भाभी, मैं तुम्हें अब शर्माने न दूँगा।" कहकर उसने घूँघटको वैसे ही उठा दिया।

लेकिन अब कट्टो अदब नहीं भूल सकती।

बिहारीने कहा, "एक मिनटमें बड़ी-बूढ़ी हो जाना चाहती हो तो तुम्हारी मर्जी। लेकिन एक बात कहो। मैं तुम्हारे घरपर आऊँ तो भोजन दोगी न ?"

कट्टोने अपने मास्टर-साहबकी ओर देखा, इस भावसे कि—आज्ञा है ? फिर कहा—

"हाँ, कल सवेरेका निमन्त्रण है। याद रखना, भूलना नहीं। इन्हें भी साथ ले आना।"

२१

इसी डाकसे बाबूजीको दो पत्र गये हैं। बिहारीने लिख दिया है,—सब ठीक है, मुहूर्त्त निकलवा लें, सत्यको राज़ी समझिए, सत्यकी माँ जल्दी ही चाहती है।

इधर बिहारीकी शोखी देखकर सत्य फिर पल्टा खा गया है। साथ ही समझता है,—आनाकानी करते रहनेमें भी कुछ बात है। उसने बाबूजीको यह पत्र लिखा है—

"बाबूजी, बिहारी आ गया है, प्रसन्न है। उसे लौटनेमें विलम्ब हो तो आप चिन्ता न करें। मैं उसे जल्दी नहीं लौटने दूँगा। कब तो आया है। ...मैंने आपको एक लड़कीकी बात कही थी। आप भूले न होंगे। पिछले दिनोंमें कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उठ आईं कि मुझे उसकी विशेष चिन्ता करनी पड़ी। वह बातें मैं आपको लिख नहीं सका, अब भी खुलकर लिख नहीं सकता। शायद बिहारीने आपको कुछ लिखा होगा। बिहारीको मैं अपना पूरा दिल कैसे दे सकता हूँ? मालूम नहीं, बिहारीने क्या लिखा है। लेकिन मैं तो अभी पूरी तौरसे हाँ कर नहीं सकता। उस लड़कीसे कुछ बातोंमें मैं बँध बैठा हूँ। वह मुझे न जाने किस ढंगसे देखने लगी है। वह समझती है, मैं उसको अपनाऊँगा। या तो इस समझको मुझे अपनी ओरसे तोड़ना होगा, या नहीं तो किसी तरहसे उसीके दिलमेंसे यह भाव निकाल देना होगा। पहली बात मुझसे न होगी, दूसरी बात मालूम नहीं कैसी होगी। लेकिन जबतक यह न होगी तबतक मैं अपने हाथोंमें नहीं हूँ, और आप कुछ भी निश्चित न समझें।

गरिमाको नमस्ते दे दें और विपिनको प्यार। —आपका सत्य"

जैसे मन उसका अस्थिर है वैसे ही उसकी बात भी डिगमिगाती होती है। दो-टूक कहना नहीं जानता। इस चिट्ठीके बाद भी उसका मन डाँवाडोल है। सोचता है, देखें बाबूजी क्या जवाब देते हैं। जैसे अपना निर्णय वह आप नहीं करना चाहता,—चाहता है दूसरे उसके लिए निर्णय करके दे दें। मन-भाया निर्णय दूसरेसे पाकर वह झट उसे मान लेगा। हमें बिहारीकी बात ही ठीक जँचती है। वह दूसरोंकी ओट चाहता है, जिससे कामका सारा उत्तरदायित्व वह उनपर फेंक दे सके, और खुद अपने सामने अपराधी बनकर खड़े होनेसे बच जाय।

विहारी नहरसे नहाकर आया है। अब वह कट्टोके निमन्त्रणपर जायगा। सत्य मन-ही-मन सोच रहा है—अगर बाबूजीने लिख दिया कि 'जो चाहे

करो, मेरी और गरिमाकी चिंता न करो, गरिमाका इसी सालमें कहीं और ब्याह कर दूँगा'—तो ? तब तो मैं कहींका नहीं रह जाऊँगा। यह ठीक नहीं होगा। लेकिन देखूँ तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

सत्यको अब जमीनपर और हिसाब किताबके साथ चलनेकी अक़ल सूझी है। अब वह चारों ओर ठोक-बजाकर, जाँच-पड़तालके बाद, नफे-नुकसानकी सारी बातोंका लेखा लगा चुकनेपर, आगे बढ़ना चाहता है। अब उसे हठात् यह सूझ रहा है, कि इधर क्या लाभ-हानि है और उधर कितनी है, यह सब देख-भाल लेनेकी जरूरत है। इस आमद-खर्चकी हिसाबी सूक्ष्म-बुद्धिपर चढ़कर जब वह तोलने बैठता है तो देखता है, कट्टोकी ओर आमद नहीं, खर्च ही खर्च है। दूसरी तरफ आमदनीकी कई मद्दें हैं, खर्च लगभग है ही नहीं। प्रतिष्ठा बढ़ेगी, पैसा आयगा, सुख भी मिलेगा, और भी बहुत कुछ। दूसरी तरफ सब कुछ खर्च होगा,—मिलेगा क्या ? यह नहीं कि सत्य खर्चसे चूकता है पर अब वह खर्च लेखा देखकर करना चाहता है। आमदनी देख ले, तब दान देगा। बिना पड़ता बैठाये उत्सर्ग करनेसे, वह देखता है, कुछ हाथ नहीं आता।

ऊहापोहमें बहुत काल पड़े रहनेपर एक दिन जब यह कामकी बुद्धि सत्यमें पैठी, तब देखा, वह अब तक कैसे बे-लाभ आदर्श कल्पनाके वीरान मैदानमें फिरता रहा है। यह भी देखा, बाबूजीको वह चिट्ठी लिख चुका है, और सम्भव है, तीर वापिस न आये। तो भी अभी आशा है, काम बिलकुल नहीं बिगड़ा, देखें तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

इस कुर्सीपर बैठा बैठा सत्य कहाँका बहका कहाँ पहुँच गया है, नहरसे नहाया आता हुआ बिहारी इसकी बिल्कुल कल्पना न कर सकता था। वह अब कट्टोके यहाँ जा रहा है। उसने पूछा, "सत्य, चलोगे ? वह खास तौरसे तुम्हें लानेको कह गई है।"

"मैं नहीं जाता, तुम्हीं जाओ।"

"वह बिगड़ेगी मुझपर।"

"कह देना सिरमें दर्द है।"

"तब तो वह मुझे थालीपर बैठा छोड़कर तुम्हारा सिर संभालने दौड़ी आयगी।

"कुछ कह देना, लेकिन मैं जा नहीं सकता।" "क्या बात...?"

"बात नहीं। लेकिन... यूँ ही।"

"अच्छी बात है।...सत्य, मैं सोच ही रहा था, तुमसे कहूँ कि तुम न जाओ, मुझे अकेला ही जाने दो।"

"सो ही तो।..."

सत्य खुद पलट चुका है, फिर भी कोई कट्टोकी ओर खिंचे यह उसे नहीं चाहिए। इसीलिए वह इस बेढंगे संक्षिप्त 'सो ही तो' के अलावा और कुछ न कह सका।

बिहारीने धोती फैलाई, बाल काढ़े, नई कमीज पहनी, धोती भी दूसरी बारीक निकाल ली-यह सब सत्य देखता रहा। आज पहली बार सत्यको पता चला कि बिहारीके सभी कपड़े मुझसे अच्छे हैं, और बिहारी शकल सूरतमें अच्छा लगता है। बिहारीने पैरोंमें स्लीपर डालकर कहा—

"चलता हूँ। तुम्हारे लिए माफी माँग लूँगा। लेकिन मैं भाभीके विनाश-के लिए जा रहा हूँ। आज भाभी अंतर्द्धान कर जायेंगी, कट्टोका पुनरुद्भव होगा।-भाभी, यह बिहारी आता है, आज तुम्हारा संहार करने, यह तुम्हें जगत्से लोप-विलोप-संलोप कर जायगा, और तुम्हारी जगह छोड़ जायगा एक आलुलायित लोल-लोचन, कटाक्ष-संयुता, शुभ्रांबरपरिवेष्टिता, विधवा-विशेषणयुक्ता, जगदम्बस्वरूपा, मुक्तकेशी, सुहासिनी गँवारिणी।" यह कहकर दोनों पैर जोड़े 'एटेन्शन', खड़ा हो गया और बोला—

"देखा, सत्य, मैं भी कैसी साहित्यिक भाषा बोलकर अभिनय कर सकता हूँ?" कौन बताये, इस अभिनयके खिलवाड़में और साहित्यिक-व्यर्थताके आडंबरमें बिहारी किस गहरी उमड़नको छिपा डालना चाहता था।

जब चलनेको मुड़ा तो आँखोंके कोनोंमें आई हुई दो नन्हीं-सी खारी बूँदोंको उसने झटपट पोंछ डाला। बिहारी, तुम धन्य हो, जो जब रोना आता है तो हँसकर दुनियाको धोखेमें डालकर बेजाने-बेदेखे आँसू पोंछनेका अवसर निकाल लेते हो! पर बिहारी, यह तुम्हारा बिहार दुनियाको भुलावे-में डाल दे, तुम्हें खुदको और इस लेखकको भुलावेमें नहीं डाल सकता। यह देखो, जीनेसे उतरकर कोनेमें तुम बहुत-से मोती आँखोंसे डाल रहे हो, यह तुम्हारा लेखक तुम्हें देख रहा है और तुम्हें पढ़ रहा है।

जाओ, कट्टोके पास जाओ। वह तुम्हारे बहाने मास्टरका इन्तजार कर रही है।

२२

हँसते हुए बिहारी कट्टोके घरमें घुस गया। सामने ही कट्टोकी अम्माँ खाटपर बैठी हैं। वह कभी इस घरमें नहीं आया है, और अम्माँ उसे नहीं जानती।

सीधा आकर बिहारीने कहा—अम्माँ, मुझे जानती हो ?

अम्माँने देखा, एक अच्छे कपड़े पहने खूब अच्छा दिखनेवाला युवा सामने हँसता हुआ खड़ा है।

"नहीं तो बेटा !"

"अच्छा बताता हूँ,—पहले पैर छू लेने दो ।" कहकर पैर छुए और उसी खाटपर अम्माँके पास बैठ गया।

"अम्माँ, मैं सत्यके यहाँ आया हूँ। कल आया था,—दिल्लीसे।

"दिल्लीसे ?—"

"हाँ, अम्माँ ।"

"दिल्लीमें तो सत्य···"

"हाँ हाँ वहींसे।"

"बड़ा अच्छा आया तू। सत्य तो···"

"अम्माँ, मैं रोटी खाने आया हूँ। कट्टो कल मुझे न्यौता दे आई है।"

"तू कट्टोको कैसे जान गया ?"

"उसके मास्टर-साहबसे जान गया हूँ।"

"सो वह तुझे न्यौता देकर आई थी ? तभी तो सवेरेसे लगी है।"

"सो बात नहीं, अम्माँ। लग तो मास्टरजीकी वजहसे रही है। उन्हें भी न्यौता था। पर वह तो आये नहीं,—आ नहीं सके। अब मैं ही दोनोंके बदलेका खाऊँगा।"

"है कट्टो बड़ी अच्छी। उसने मेरे मनकी बात की। पहले तो तेरा हमारे ही यहाँ हक़ है।"

कट्टोकी अम्माँ, कट्टोकी तारीफ़ इस बिहारीके सामने न करो। नहीं तो वह शुरू करेगा तो रात-दिन एक कर देगा। तुम नहीं सुन सकोगीं,-इसीलिए वह चुप हैं।

"जा भाई, जा। उधर है चौका।...कट्टो, देख तो, तेरे मेहमान आये हैं।"

"कौन है ?" जानती है, फिर भी पूछनेके लिए उसने पूछा।

चौकेमें कदम रखते हुए विहारीने कहा—

"दासानुदास विहारीदास !"

"वह नहीं आये ?"

विहारी शैतान है, उसने पूछा, "कौन ?"

कट्टो झेंपी,— चुप।

विहारीने यहाँ सत्यको गाली दे डालनेकी इच्छा की।

"नहीं..."

स्वरमें भारी निराशा थी बोली, "क्यों...?"

"यों ही कुछ काम जरूरी लग गया, आ नहीं सके।" कहा है, "मेरे लिए माफी माँग लेना।"

"तबीयत तो कुछ खराब नहीं है ?"

"बिल्कुल नहीं..."

आज बहुत-बहुत सी चीजें बनाई गई हैं। उस दिन-कैसा खाना नहीं है—गिनतीमें सात-आठ चीजें होंगीं। आज पहले-ही-से दो पटड़े रक्खे हैं, पानी भरा रक्खा है, सब काम ठीक है। लेकिन आज खानेवाला विहारी ही है,--और कोई नहीं है। मास्टरको सिर्फ़ एक ही दफ़े खिला सकी है जब कि उन्हें अपना पटड़ा खुद बिछाना पड़ा था और अपना पानी आप ओमः लेना पड़ा था। यह कैसा दुर्दैव है।

पर यह विहारी उसे दुर्दैवकी चिन्तामें पड़े रहनेके लिए खाली नहीं छोड़ेगा। आते ही बात-चीतका सिलसिला छेड़ दिया है, और कट्टोके दुर्दैव-की याद भागती जा रही है।

खाते खाते विहारीने कहा—

"भाभी,—ऊँह भाभी मैं तुम्हें नहीं कहना चाहता। तुम बार-बार लजाती जो हो। हमारा तुम्हारा एक और रिश्ता भी है,—बताऊँ ?"

कट्टोने देखा यह 'भाभी' कहकर शुरू करनेवाला विहारी बड़ा दुर्घट जीव है। न जाने अब कैसा मजाक करनेवाला है ? वह व्यस्ततासे अपने रोटीके काममें लग गई जैसे विहारीकी बकवासपर उसे ध्यान देनेकी फुर्सत नहीं है।

"वह फिर बताऊँगा। उसे सुननेके लिए तुम्हें तैयारी करनी पड़ेगी। अब तो 'कट्टो' कहना चाहता हूँ।...एँ, यों चौंको नहीं। 'कट्टो' कोई बुरी बात नहीं है।"

"तुम नहीं कह सकते कुछ मुझको !"

"मेरा रिश्ता सुनोगी, तो समझोगी, कट्टो, मैं कह सकता हूँ।"

कट्टो अब झगड़ पड़नेको तैयार है। यह निर्दय उद्धत व्यक्ति आतिथ्य-का दुर्लाभ उठाता है। जैसे कट्टो बिल्कुल ही बच्ची है !

"तुम कुछ नहीं कह सकते—समझे ?"

बात कहींकी कहीं जा पड़ी है। अपनेको बिल्कुल खोलकर रख देनेसे ही अब वह मोड़ी जा सकती है। नहीं तो समझो, बिहारीका आजन्म-निर्वासन हो जायगा। कट्टोकी उपस्थितिमें फिर वह कभी प्रवेश न पा सकेगा। यह सब बिहारी तुरन्त समझ गया। उसने कहा—

"तुम बिहारीको नहीं समझतीं। अगर उसने तुम्हें जरा भी दुःख पहुँचाया है तो उस जैसा अभागा व्यक्ति दुनियामें कोई नहीं। वह तुमसे क्षमा चाहता है। उसकी बात सुनोगी तो उसपर बिगड़ न सकोगी। और जितनी जल्दी सुन लोगी उतना ही अच्छा होगा। विश्वास रक्खो, तुम्हें तनिक दुख पहुँचानेसे पहले वह—खैर, तुम क्या समझती हो, वह भूत उतारनेके लिए यहाँ आया है ?"

"बिहारी बाबू, मैं कुछ नहीं जानती। पर मुझसे मज़ाक मत करो।"

"नहीं करूँगा। पर रोकर रोनेसे हँसकर रोना अच्छा है। इसीलिए मज़ाक करता हूँ,—क्योंकि भीतरसे तुम्हें रुलानेकी तैयारी कर रहा हूँ।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ नहीं आती। साफ़ क्यों नहीं कहते हो ?"

"खानेसे निबटकर सब कहूँगा, अभी तो एक रोटी दे दो, और वह साग ...वह नहीं,...आलूका।"

फिर कोई कुछ नहीं बोला। खाना खाकर उठा तो पूछा, "अपनी बात अब कह सकूँगा ?"

"चौकेसे निबट लूँ, तब। जाओ नहीं, अम्माँके पास बैठो।" फिर थोड़ी देर रुककर कहा "बिहारी बाबू, तुम कोई हो, बड़े भले आदमी हो। इस बारेमें मैं अब कभी भूल नहीं करूँगी। कोई अपराध बन गया हो तो भूल जाना। मैं, देखो, गँवारिन हूँ।"

बिहारी ऐसी आत्म-पीड़नसे भरी क्षमा-आशाके सामने बिल्कुल न ठहर सका।

"अम्माँके पास बैठता हूँ, तभी जाऊँगा।"

चौकेसे बाहर होते ही 'अम्मा-अम्मा !' खूब मचाता हुआ बिहारी चला

अम्माँके पास।

"खा लिया रे ?"

"इतनी चीजें बनाईं, अम्माँ, कि खाते खाते सब नहीं खा सका। सबको चखते चखते ही पेट दूना भर गया। अब तो, अम्माँ, लेटे बग़ैर गुज़ारा न होगा, —पेट जवाब दे देगा।"

अम्माँने अपनी खाट छोड़ पीढ़ा सँभाला, कहा—

"धूप आ गई है, खाट वहाँ जामनकी छाँहमें कर ले, और नेक सो जा।"

वह लेट गया। पेड़पर अधपकी जामन लग रही हैं। देखते देखते बिहारीके सिरपर कट्टसे एक जामन पड़ी।

"अम्माँ, तुम्हारे घरमें यों आकाशसे बम्बके गोले गिरते रहेंगे, तब तो मैं यहींका हो रहूँगा। घर भी नहीं पहुँच पाऊँगा।"

"अरे, रो मत, सो जा। मर नहीं जानेका, जा, मैं कहती हूँ। दिल्लीमें भी मिला है कभी तुझे ऐसे सोनेको ? वहाँ तो चाहे इसके लिए तरसता ही हो !"

"जाने दो, मेरा क्या, मैं तो सोये जाता हूँ। मेरा सिर फूट गया तो दूसरा अम्माँको ही देना होगा।"

"हाँ हाँ, दे देंगे। सो—तू—अब।"

बिहारी जामनके तले माँके प्यारकी छाँहमें, कट्टोके इस गँवई स्वर्गगृहके आँगनमें आँख मींचकर सो गया।

२३

कट्टोके तेलसे गीले हो रहे आले-वाले कमरेमें।

"मैं दिल्लीसे सत्यके लिए विवाह-प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"तो—?"

"तो तुम्हें इससे कुछ मतलब नहीं ?"

"कुछ नहीं।"

"तुमने गरिमाका नाम सुना है ?"

"नहीं।"

"मैं उसका भाई हूँ।"

"अच्छा।..."

"अभी जो थोड़े ही दिन हुए सत्य गया था तो हमारे ही साथ गया था।"

"हुँ..."

"मैं वहाँसे विवाहकी बात पक्की करने आया हूँ।"

"पक्की हो गई ?"

"बिल्कुल तो नहीं। लेकिन—"

"झूठ बोलते हो।"

"झूठ क्या ?"

"यही कि विवाहकी बात पक्की हो गई। तुम वृथा आये हो। विवाहकी बात पक्की नहीं कर सकोगे।"

"यह तुम कैसे कहती हो ?"

"मैं कहती हूँ।"

"लेकिन तुम भूलमें हो।"

"नहीं हो सकती।"

"हो तो—?"

"हो नहीं सकती।"

इतना विश्वास ! हाय, क्या सत्य इसके योग्य है ? क्या सत्य ऐसे निश्छल विश्वासके साथ खेल करने चला है ? ऐसे स्वर्गीय विश्वासको फुसलाकर फिर उसके साथ छल करेगा ?

आह ! इस कट्टोपर वह छल फूटेगा तो क्या हाल होगा ?

बिहारी बोला, "परमात्मा करे, मैं झूठ बोल रहा हूँ। मालूम होता है, सत्य असमंजसमें है। वह शायद मेरी बहनके साथ ही शादी करनेको लाचार हो। मुझे यही दीखता है।"

"————?"

"लेकिन मालूम होता है, वह बंधनमें है। तुम उसे खोल सकती हो।"

"ओह, क्या कहते हो ? मेरा बंधन !—मेरा कैसा बंधन !! मैंने कब क्या बाँधा है जो खोल सकूँ ? मैं क्या बाँध रखने लायक हूँ ? लेकिन यह सब तुम क्या कर रहे हो ? जानते हो, यह उससे कह रहे हो जिसके लिए यह बातें कही न कही सब बराबर हैं।"

"मैंने सत्यसे पूछा है। बातें की हैं। उसने सारी बातें मुझसे खोलकर कह दी हैं। अगर उसे अपनी बातका ख्याल न हो, तो उसकी खुशी, मैं जानता हूँ, किधर है।"

"उनकी खुशीके लिए मेरा तन ले लो। पर मुझसे ऐसी बात न करो।"

बिहारी यह किसे मनाने चला है, जो बिना शर्त, बिना कारण सुने, बिना माँगे सब कुछ दे डालनेको,—सब कुछ मान लेनेको पहलेहीसे तैयार है? फिर भी तफसील देना, सफ़ाई देना, मानों काटकर फिर उसे नमकसे भरनेका प्रयत्न करना है। लेकिन बिहारी कह ही रहा है—

"सत्यका उतना दोष नहीं है। वह अपनी बात पूरी करे तो उसकी माँ मर जायगी। उस..."

कट्टो निरपेक्ष—चुप।

"उसकी क्या प्रतिष्ठा रह जायगी? लोग क्या कहेंगे?..."

कट्टो चुप—सुन्न।

"मेरे बाबूजीसे उसे ऊँचे लोगोंसे सम्बन्ध और पैसेकी सुविधा प्राप्त होगी। तुमसे...?"

कट्टो सुन्न—मूर्तिवत्।

"मेरी बहिन खूब पढ़ी है। अँग्रेजी जानती है, और बड़ी बड़ी बातें जानती है। तुम...?"

कट्टो मूर्ति-सरीखी—जड़वत्।

"मेरी बहिन उसे खूब सुख पहुँचा सकेगी। तुमसे उसे संतोष नहीं प्राप्त होगा।...उसे खोल क्यों नहीं देतीं?"

कट्टो जड़वत्—अचेत।

बिहारी कहे जा रहा है—

"सत्यकी माँ, सत्यकी बड़ाई, सुख, प्रतिष्ठा, संतोष और सत्यकी भलाई...";

पर देखो देखो, कट्टो अचेत मूर्छित होकर गिरी जा रही है!

बिहारीने झट-से सँभाल लिया। सत्यपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहाँ होता तो उसका सिर पकड़कर इस कट्टोके पैरोंके पास धूलमें,—धूलमें इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते! हाय, कम्बख्त स्वर्गके इस अछूते पारिजातकी गंधको जूठा करके छोड़े जा रहा है!

कट्टोको खाटपर लिटा दिया। कुछ उपचारसे होश आया। कट्टोने जागकर देखा, कि बिहारी शुश्रूषामें लगा है।

"बिहारी बाबू, आप जाओ। उनसे कह देना कि अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती न करें। मेरे पीछे उन्हें थोड़ी भी चिन्ता भुगतनी पड़ी तो मैं अपनेको क्षमा न कर सकूँगी। मैं क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होंने दुख भुगता! न हो, तो मैं ही उनसे कहूँगी। कहूँगी, अपनी कट्टोपर इतना एहसानका बोझ न डालो, मुझसे उठाया न जायगा, मैं उसके नीचे सदा दुखी रहूँगी। इससे मेरी गिनती छोड़ दो। तुम्हारे सुखसे ज्यादे मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उसीको नष्ट कर दूँगी तो कहींकी न रहूँगी।...बिहारी बाबू, आप जाओ। बड़ा कष्ट पहुँचाया आपको। पर कट्टो बड़ी सुखी है। बहुत दिनोंके बाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी जो उनकी खुशीकी राह खोल दे। बड़ा सौभाग्य है कि आखिर मैं उनके किसी काम आऊँगी। उनसे कहना, कट्टोपर विश्वास रक्खें, वह उनकी बड़ी ऋणी है;—नहीं, मैं ही कहूँगी।"

बिहारीने कहा—

"दुनियामें सभी सत्य नहीं हैं, बिहारी भी हैं। तुम्हारी तरह पुरुष भी हैं जो बिना लिये दे सकते हैं।"

"नहीं, सभी उन जैसे नहीं हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेंगे। और ठीक करनेमें अपनेको बचायेंगे नहीं। देने-लेनेका कुछ सवाल नहीं है।"

"लेकिन।..."

"नहीं, तुम उन्हें नहीं समझ सकते।"

इस तरह कटकर बिहारी चुप खड़ा रह गया। इस लड़कीका विश्वास, जो अब गड़कर हिलनेका नाम नहीं लेता,—चाहे प्रलय आ जाय, चाहे हिमालय ढह पड़े; जो अटल-अडिग खड़ा रहेगा।—हो जो होना हो। इस विश्वासको देखकर वह स्तंभित रह गया। कुछ देर चुप रहकर बोला—

"परमात्मासे मैं बात नहीं करता। करूँगा तो उसे भी 'तुम' कहूँगा। क्या तुम्हें अब 'कट्टो' भी नहीं कह सकता?"

"अब जो चाहे सो कहो।...'कट्टो' ही ठीक है।" फिर हिचक कर कहा "नहीं ठहरो, पहले उनसे मिलना होगा।"

"कुछ कहो, अब मिलूँगा तो—कट्टो ही कहूँगा, और तुम नाराज न हो

सकोगी। बिहारीसे नाराज़ होगी तो वह मना छोड़ेगा। अब जाता हूँ।"

"जाओ, पर उनसे कुछ न कहना। मैं ही आऊँगी।"

बिहारी विस्मय और विक्षोभ लेकर चला गया।

२५

सत्यको बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए बिहारीको नहीं जाने देता। बिहारीको भी बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है इसलिए वह ठहर रहा है।

एक ही डाकसे दोनों पत्र आये। सत्यने अपनी डाकमेंसे बिहारीका पत्र उसे निकालकर दिया और उसकी तरफ़ शंकासे देखा।

सत्यने अपना पत्र भी उतावले काँपते मनसे अकेलेमें खोला। पढ़ा—

"बेटा सत्य, तुम्हारा खत मिला। तुम समझदार हो, अपने लिए आप तय कर सकते हो। अगर तुम उस लड़कीका भला चाहते हो तो मैं कैसे भी मना नहीं कर सकता। गरिमाके लिए दूसरा वर ढूँढ़नेमें मुझे बहुत दिक्कत नहीं होगी,—उस ओरसे निश्चिंत रहो। लेकिन होगी यह एक बात दुःखकी। क्या मैं बताऊँ कि इस संबधपर ज्यादे जोर मैं तुम्हारे ही कारण देता रहा हूँ। तुम्हे न जाने क्यों, बेटा मानने लगा हूँ। वैसी ही मुहब्बत करता हूँ। मेरा कुछ नहीं, पर ऐसा होगा तो तुम्हें बड़ा नुकसान होगा। उसीका ख्याल है। तुमपर तो अब भी मैं दया करना चाहता हूँ,—मुहब्बत करना चाहता हूँ। तुम उधर फँस बैठे हो तो जाने दो। खुशी है कि इसमें मेरा कसूर नहीं, अपने अलाभके लिए अपनेको ही धन्यवाद दे सकोगे

"सत्य, मैंने उमर यों ही न खोई। कुछ दुनिया भी जानी है। दुनिया मोमकी चीज़ नहीं, और न किताब ही है जिसे पढ़कर खतम कर सकते हो। यहाँ जगह जगह टक्कर खाना पड़ता है और समझौता करना पड़ता है। जीवन दायित्वका खेल है, पग-पगपर समझौता है। जो मन नहीं मार सकता, जिसे झुकना और छोटा बनना नहीं आता,—जिसे दूसरोंकी सुविधा और दूसरेको निभानेकी दृष्टिसे झुकना और राह छोड़ना नहीं आता,—वह ज़िन्दगीमें कभी कुछ नहीं कमा पाता—जिन्दगीका संतोष भी नहीं। सत्य, तुम्हें यह सीखनेकी आवश्यकता है। कोई यहाँ नितान्त स्वतन्त्र, नितान्त एकाकी नहीं है,—जो ऐसा समझता है वह दायित्वसे डरता है और कापुरुष है। सब

कुछ उत्तरदायित्वोंसे बँधे हुए हैं उन्हें जंजाल समझो, कर्तव्य समझो, —लेकिन उनमेंसे भाग निकल छूटना न चाहो। क्योंकि भाग छूटकर देखोगे कि तुमने जीवनको रेगिस्तान बना लिया है।

"सत्य, इस वक्त तुम झमेलेमें हो। मालूम होता है कि प्रेमको जीवनमें ठीक स्थान अभी नहीं दे पाये हो,—इसीसे दिक़त उठा रहे हो। क्या तुम उस लड़कीसे प्रेम करते हो ?...मैं ऐसा ही समझता हूँ। प्रेम जो क़ब्जा चाहता है,-वैसे प्रेमकी छूट समाजके लिए अनिष्टकर है। प्रेममें यदि इस आधिपत्यकी आकांक्षा है,—यह कि वह मेरी है, मेरी ही है, मेरी हो जाय,—तो इस प्रेममें, विश्वास रक्खो, गँदलापन है। स्वच्छ और वास्तव प्रेम इस प्रकारकी आधिपत्य-आकांक्षासे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है। वह 'उस' की प्रसन्नता, उसका सुख, उसके संतोषकी ओर सचेष्ट रहता है,—उसपर क़ब्जा कर लेना नहीं चाहता।

"अब विवाह क्या है ? विवाह बिल्कुल एक सामाजिक समस्या है, सामाजिक तत्त्व है। तुम भूलते हो, अगर तुम उसे और कुछ समझो। उन कुछ उत्तरदायित्वोंसे, जो जीवनके साथ बँधे हैं, उऋण होनेके लिए यह विवाह-का विधान है। दुनियामें क्या करना है, उसकी दृष्टिसे लाभपूर्ण क्या होगा, क्या नहीं, कुटुम्बियोंकी प्रसन्नता किस ओर है, और अपना स्वार्थ किस ओर है,—ये सभी बातें विवाहके प्रश्नमें संश्लिष्ट हैं। 'स्वार्थ' शब्दसे घबड़ाओ नहीं। देखोगे तो परमार्थ शुद्ध स्वार्थ है। लेकिन मैं कहता हूँ कि शब्दसे मत डरो, तथा देखो और वास्तविकताको पहचानो।

"तुम प्रसन्न होगे। जो करो उसमें मेरा आशीर्वाद समझो। मैं तुम्हारा सदा भला चाहता हूँ। तुम्हारा विवाह कब होगा, लिखना। गरिमाके विवाहमें वैसे आओगे तो जरूर ? अब मैं उसे कब तक टालूँ ?—इस सालमें कर ही दूँगा। गरिमा तुम्हें नमस्ते कहती है, विपिन नमस्कार।

"मेरे उपदेशपर नाराज़ न होना। चाहोगे तो यह तुम्हें बहुत मदद दे सकेगा। मैंने समझा, तुम ऐसी खरी और कठिन बातें सुननेकी जरूरतमें हो।—इसी लिए लिख दीं।

तुम्हारा-भगवद्दयाल"

बिहारीको यह पत्र लिखा गया था—

"बिहारी, जानते हो, तुम्हारे पत्रके साथ सत्यका भी एक खत मिला था। तुमने लिखा था वह सँभल गया है,लेकिन वह सँभलनेके मार्गपर आकर अभी बिदक रहा है। पर मैं साफ देख रहा हूँ, आयेगा आखिर वह उसी राहपर। तुम उससे कुछ मत कहो। एक बार इधरसे आशाका तार टूटा कि वह बेसहारा हो जायगा। तब उसे मेरे पास आये ही सरेगा। नहीं आयेगा तो वह भी ठीक होगा। तब उसे कठिन,ठोस,बे-मुरव्वत दुनियाके सामने पड़ जाना होगा। और यह बुरी बात न होगी। मैं जो समझाकर कहता हूँ, दुनियासे वही थप्पड़ खाकर सीखेगा। बिहारी, मैं देखता हूँ, वह तेरे जैसा बिहारी नहीं है। वह मेरे जैसा संभ्रान्त, सभ्य, पैसे और प्रतिष्ठासे सुभीतेवाला आदमी नहीं बनेगा तो मुश्किलमें ही रहेगा। झोपड़ीमें रहकर या आवारा रहकर जीवनकी पूरी तुष्टि पा लेना उसके बसका काम नहीं है।

"तुम उसपर बिल्कुल जोर न दो,—आ जाओ। अगर इस विवाहके टलनेका मुझे दुःख होगा तो सत्यके ही खातिर,—गरिमाके कारण नहीं।"

"बाकी यहाँ सब ठीक है।

तुम्हारा—बाबू।"

२५

सत्यको इस खतकी एक एक बात मान्य होने लगी। कट्टोको वह प्यार करता था,—यह वह अब मान लेनेको तैयार है। इस प्रेमके ही कारण वह उसकी रक्षा करना चाहता था और अपनी बना लेना चाहता था। जहाँ यह 'अपनी' बना लेनेकी कामना है,—वह प्रेम उपादेय नहीं है। अब इसमें सत्यको संशय नहीं रहा।

फिर दूसरी भी तो बात है। प्रेम जीवनको बहलानेकी वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नहीं किया जा सकता। जीवन तो दायित्व है, और विवाह वास्तवमें उसकी पूर्णताकी राह,—उसकी शर्त्त। इस दायित्वसे एक ख्याल,—एक भावनामें बहककर कैसे छुट्टी पाई जा सकती है? प्रेमको इस दायित्व-पूर्ण विवाहकी बातमें कैसे दखल देने दिया जाय? जीवन प्रेमसे

ज्यादे महत्त्वकी,—ज्यादे ऊँची और पवित्र चीज़ है। प्रेम,—जो अन्तमें केवल एक आवेश—एक भाव है, उसपर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाय? वकील साहबकी यह बात उसे स्पष्ट-अमिट सत्यकी नाईं लग रही है। मानों वह जिस आधारभूत जीवन-सिद्धान्तपर पहुँचनेका अबतक प्रयत्न कर रहा था,—वह जगह जहाँ पैर टिके और जहाँ पक्की नींव बाँधकर जीवन खड़ा किया जा सके,—वह मानों उसे मिल गया। अब उसके बारेमें भूल नहीं करेगा। अब उसे साफ़ दीख रहा है—अबतक जिन बातोंको ठीक समझकर वह अपनेसे चिपटता था, वह कोरे शब्द थे,—कोरे भाव। उनपर दुनिया नहीं टिक रही है। जो वकील साहबने लिखा,—"वह है जिसको केन्द्र मानकर दुनिया चल रही है, और व्यक्तिको चलना चाहिए। जीवन एक दायित्व है,"—कैसी सुन्दर बात है, कैसी अच्छी लगती है! और वह दायित्व है किसके प्रति?—संसारके प्रति, संसारकी उन्नतिके प्रति!

बिहारी होता तो कहता, "—अपने प्रति, अपने अंतःकरणके प्रति।" विनोदशील बिहारी और विचारशील सत्यमें यही अंतर है।

लेकिन सत्यके लिए पत्रके उत्तर-पैराग्राफ़ तो ठीक हैं, पहला गड़बड़ है। यह बात उसके अहंभावको चुटकियाँ ले रही है कि यह विवाह उलट गया तो उसकी ही मुश्किल है, गरिमाकी नहीं,—यह कि उसीपर दयाकर वह अबतक इस संबंधपर ज़ोर दे रहे थे। लेकिन सोचता है तो बात ठीक ही है। गरिमाको, जब चाहो तब, उससे हर हालतमें अच्छा वर प्राप्त हो सकता है, और उसके बिना वकील साहबके जीवनमें कोई अभाव, कोई अपूर्णता नहीं पैदा होती। जब कि इधर तो सत्यके लिए आगे कुछ दीखनेका मार्ग ही बंद हो जाता है।

पर, बिल्कुल निराश हो बैठनेकी अभी बात नहीं है।

वह कमरेमें आया। बिहारी वहीं बैठा है। बाबूजीका पत्र पाकर सत्यके प्रति उसका आदर बढ़ गया है। उस पत्रसे बिहारीने देखा कि सत्य अब भी अपनेसे झगड़ रहा है, हार मान नहीं बैठा। और अपने आपसे बराबर लड़ते रहना ही तो जीवनमें एक क़ीमती चीज़ है!

लेकिन बिहारीको यह नहीं मालूम कि सत्य हारको हार नहीं मान रहा, वह लड़ाईसे विमुख होकर इस क़ीमती लड़ाईको बिल्कुल व्यर्थ चीज़ ठहराकर

स्वीकार कर रहा है ।

बिहारीने कहा—आओ भाई सत्य, मेरा धन्यवाद लो ।

"धन्यवाद कैसा ?"

"पता चला है कि मुझसे कहनेके बाद भी तुम कट्टोके बारेमें बिल्कुल लापर्वाह नहीं बन चुके थे ।"

"हाँ, बाबूजीको कुछ ऐसा ही लिखा था ! लेकिन..."

"लेकिन ?..."

"लेकिन जीवन एक दायित्व है ।..."

"फिर ?"

"और...और प्रेम एक अस्थायी भावना । जीवनके स्थायित्वको अस्थायी भावनाओंका आधार नहीं काम देगा ।"

"सीधी सादी हिन्दी भी क्या काम नहीं देगी ? भई, ऐसे तो बात करो जो यह बिहारी समझ जाय ! जीवनका स्थायित्व कैसा ?—क्या जीवन स्थायी चीज़ है ? यानी संसारमें बिताये जानेवाले ये पचास-साठ-सौ साल ?—स्थायित्वकी परिभाषाकी हद क्या सौके अंक तक ही है ?"

"ग़लत मत समझो । जीवन स्थायी है, उसे एक दिशाकी ओर ही बढ़ते रहना चाहिए,—यही उसका स्थायित्व है ।"

"....और यही आपका पांडित्य है !"

"बिहारी, तुम यह नहीं समझते, इसमें मेरा क्या दोष ? अपनेको टटोलता हूँ, तो देखता हूँ कि कट्टोकी ओर मैं उस भावसे खिंच रहा हूँ जिसे प्यार कहा जाता है । यह प्रेम एक भाव है, और भाव पैदा होने और मिटनेके लिए होता है । अर्थात् यह क्षणस्थायी है । अब विवाह एक टिकनेवाला सत्य है, दायित्वका अंश है । प्रेमको उसमें दखल देने देना ठीक नहीं होगा ।"

"और सब कामोंमें बहुत ज्यादे अक़्लको भी दखल देने देना ठीक नहीं होगा ।—तो आपने इतने दिनोंमें यह उधेड़-बुन की है ? और आपको मालूम है, इन दिनों आपकी कट्टो क्या करती रही है ? वह आपको ध्याती रही है, और आपको मन ही मन परमात्मा बनाती रही है ।"

"लेकिन मैं क्या करूं ? प्रेममें जहाँ कब्जेकी इच्छा है, वहाँ मैल भी

है। क्या इस मैलका काबू स्वीकार करूँ ?"

"नहीं जी,सो क्यों ? विशुद्ध विशुद्धताको ही स्वीकार करो । वह विशुद्धता क्या है, जानूँ तो ?"

जिस बातको मानकर दुनिया खड़ी है, जिस दुनियाकी कीलीको हम और तुम नहीं बदल सकते, उसको हिलानेकी कोशिश करनेके बजाय हम मज़बूत करनेमें सचेष्ट हों तो ज्यादे कार्यकर हो सकते हैं। और वह आधार-भूत तत्त्व की बात यह है कि कोई नितांत स्वतन्त्र नहीं है, सब ही उत्तरदायित्वोंमें बँधे हुए हैं, उन्हींमें उनका मोक्ष और कृतार्थता है।"

"बहुत ठीक। आपके जीवनका एक उत्तरदायित्व है गरिमाका पति होना। बहुत सुन्दर—और आगे ?"

"विहारी, तुमने अभी दुनियापर हँसना ही सीखा है। इसमें कुछ नहीं लगता। पर उसे समझना मुश्किल है। सो तुम्हें बाकी है।"

"ओहो, एक ही क्षणमें आप दुनियाको समझ बैठे ! ऐसी दुनियाकी समझ आपको मुबारिक और उस समयके बाद रोना मुबारिक। मुझे तो परमात्मा मेरा हँसना ही दिये रक्खे।"

"बिहारी, तुम अभी नहीं समझोगे। जाने दो।"

"ठीक है, आप समझ गये। ऐसे विशाल गहन तत्त्वकी बात विहारीके इस हल्के-से हँसोड़ दिमागमें नहीं आयेगी। लेकिन अब बताइए, क्या ठीक रहता है ? क्योंकि दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य,—या दोनों ही, वह आपकी दायित्वपरिणीता गरिमाका भाई है। और आपके निर्णयको सुनकर घर पहुँचानेका कर्तव्य उसपर आ पड़ा है।"

"विहारी, बाबूजीकी जो इच्छा है, माँ जिसके लिए कबसे ज़ोर दे रही हैं, जिसमें तुम भी और गरिमा भी शायद हृदयसे सहमत हैं,—उसे मैं नहीं टालूँगा। बड़ोंकी बात मानूँगा,—उनका आशीर्वाद खो न सकूँगा।"

"शुभमस्तु।"......"लेकिन बिहारी श्री सत्यधनजीको एक सूचना देना चाहता है। कट्टो उनसे मिलने आया चाहती है।"

खिड़कीमेंसे कट्टोको आते बिहारीने देख लिया है।

"एक निवेदन और है" बिहारीने कहना जारी रक्खा "कट्टोके संस्कृत-

शिक्षा अगाध नहीं है। उसने अभी विश्वकी फ़िलासफी भी नहीं पढ़ी है। इससे उसके सामने श्री सत्यधनजी संस्कृत फ़िलासफी ज्यादे न बखेरें। कहीं वह समझ न सके और उन्हें परमात्मासे भी ऊँचा मानने लग जाय। कट्टोकी ज़रा भी पर्वाह करते होंगे, तो विश्वास है, सत्यजी मेरा अनुरोध टालेंगे नहीं।"

तभी कट्टो दरवाजेमें आई।

२६

कट्टो दरवाजेमें आई,—-बिहारी चलने लगा।

"नहीं, जाओ! नहीं।" कहकर कट्टो सत्यसे कुछ हाथके फ़ासलेपर खड़ी हो गई।

सत्यपर उसकी आँखें पड़ रही हैं। उनमें कैसा भाव है। जैसे एक अकिंचन अनुग्रहीता किंकरी उनकी पदधूलिकी भीख लेने आई है,—बस और कुछ नहीं।

"तुमने इनका परिचय मुझे क्यों नहीं बताया?" कट्टोने सत्यसे कहा।

"बताया तो..."

कट्टोने शरारत-भरी मीठी-सी हलकी-सी एक हँसी हँसकर कहा—

"किस कामके लिए आये, सो तो...।"

इस समय सत्यको फ़िलासफ़ीके टेकनकी बहुत सख्त जरूरत है, क्योंकि मन गिरता जा रहा है और उसे इसी टेकनपर टिकाकर मजबूत रखना होगा। अच्छी तरह इस तत्त्वज्ञानकी टेकनीको जमा-जमू कर उसने कहा—

"वह बिहारीने खुद ही कहनेका जिम्मा ले लिया था।"

कट्टोको मास्टरका यह पक्कापन बड़ा अच्छा लग रहा है।—

"सो इन्होंने ही तो घर आकर सब बताया।"

अब सब चुप।

फिर कुछ देरसे कट्टोने ही कहा—

"तो हमारी जीजीको कब लाओगे?"

इस कल्पनातीत बात,—इस अनोखे दावके आगे तत्त्वज्ञताकी सुसन्नद्ध शब्द-सेनाके रहते भी सत्य सिट्टी भूल गये। चुप रहे, कुछ उत्तर न बन पड़ा।

"बोलो, कब आयेगी हमारी जीजी ?"

धीरे धीरे अपने पनका भान इन्हें हुआ। इच्छा-शक्तिको कड़ा किया, हठात् हँसकर बोले—तुम चाहती हो, मैं जीजी लाऊँ ?

"वाह, नहीं चाहती ? जो तुम चाहते हो, सो सब चाहती हूँ। मेरा परमात्मा जानता है।"

इस अबोध प्रतिपक्षीके आगे ज़ोर लगाकर तैयार की हुई सत्यकी सेना कुछ काम नहीं दे सकेगी। सत्य फिर जैसे खो गये, जैसे वह आधार मनके नीचेसे खिसकने लगा और मन धँसकने लगा।

"इन बिहारी बाबूने मुझसे कहा था कि तुम्हें मेरी जरूरत पड़ गई है। भला मैं सोच सकती थी, कभी मेरी भी जरूरत पड़ जायगी ! अब हाजिर हो गई हूँ। बोलो, सामने खड़ी हूँ। मैं तो तुम्हारी ही हूँ। मुझसे बोलते, मुझसे माँगते डरते हो ? जैसे परायेसे कुछ माँग रहे हो ? छिः—सो नहीं तुम्हारे काम नहीं आई, तो हुई ही क्या ?"

बोले जाओ कट्टो, मास्टरजी तो अचरजसे तुम्हारी सब बात सुन रहे हैं। जुबान उनकी जकड़ गई है और डरके मारे हिल नहीं सकती।

"जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें कट्टोकी खूब राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा पूरा विश्वास रक्खो। तुम्हारी खुशीमें उसकी खुशी है। तुम्हारे सोचमें उसकी मौत है। अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती मत करो,—वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममें शामिल है। बस तुम ब्याह करना चाहते हो, तो कट्टो तुम्हारी सबसे पहले तुम्हारा ब्याह चाहती है। ओहो, वह कितनी खुश होगी, खूब खूब खुश होगी। तुम कट्टोको क्या समझते हो ?—वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिन्दा रह सकेगी ?—और क्या समझते हो कि वह तुम्हें समझती ही नहीं ? वह तुम्हें खूब समझती है। तुम जो करोगे, अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छेमें खूब आनन्द मनायेगी। तुम तो कट्टोके मालिक हो,—फिर उसकी फिकर क्यों करते हो ?..."

सत्य सफेद-फक हुए खड़े हैं। बिहारी एक कोनेमें मुँह फिराकर न जाने क्या देखता खड़ा हो गया है।

"अरे, ऐसे खड़े हो ? क्या समझा, सम... बिहारी बाबू।" अंतिम

शब्दोंके निकलते निकलते निगाह बिहारीकी ओर फिरी, "अरे, यह बिहारी बाबूको भी क्या हो गया है ?..."

बिहारीको क्या हो गया है, कुछ नहीं ! वह तो हँसता हुआ बढ़ा आ रहा है। आँखें लाल हैं, गाल धोखा देकर भेदकी बात कहनेको हो रहे हैं,— फिर भी बिहारी हँसता बढ़ा आ रहा है। सामने आकर बोला—

"यह हाजिर हैं, बिहारी बाबू ?"

"तुम्हें कौन-सा भूत चढ़ता है, बिहारी बाबू?"

"मुझे तो एक ही भूत चढ़ता है,—हँसीका। वह जब कामसे कहीं जाता है, तो मुझे मुँह छिपाकर खड़ा हो जाना पड़ता है।"

"देखो; यह मुझसे बोलते नहीं। इनपर क्या फिर भूत चढ़ गया है, बिहारी बाबू ?"

"चढ़ा भी होगा तो उतर जायगा। अब वह नहीं चढ़ा करेगा। इन्होंने एक देवीकी आराधना की है। तुम नहीं जानतीं उसे। उसका नाम है फ़िला-सफ़ी। वह ऐसे ऐसे भूतोंको पास नहीं फटकने देती। मेरेवाला भी उस देवी-से बहुत घबड़ाता है।"

"इनको बुलाओ तो.."

"चेष्टा करता हूँ। पर सम्भव है इनके मुँहसे अभी वह देवी ही बोल उठे। तब तो उसकी बात शायद है कि आपके समझमें न आये पर आप घबड़ायें नहीं,—समझनेके लिए हैरान न हों, क्योंकि वे बातें बिरलोंहीकी समझमें आती हैं।"

इतना कहकर बिहारीने सत्यके कानमें गुनगुना दिया, गड़बड़ करोगे तो गरिमा गई, कट्टो चढ़ी ! तब तो गजब हो जायगा ! चेत उठो।"

सत्य एकदम झल्ला पड़े—बिहारी चले जाओ तुम यहाँसे !

बिहारीने फ़रियादके ढंगसे कट्टोसे कहा—

"भूत तो भागा, पर साथ ही मुझे भागना पड़ता है !—यह क्या न्याय है ?"

"बिहारी बाबूको रहने दो न।" कट्टोने मानो निर्णय देते हुए कहा, "उन्हें क्यों भेजते हो ?"

सत्य अब फिर चुप।

कट्टोने कहा, "बोलो। बोलोगे नहीं ?"

चुप।

बोलोगे नहीं, तो मैं जाऊँ ?"

"——"

"जाऊँ ?"

"जाओ।"

"तब एक बात कहती हूँ। एक,—बस एक। उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। करोगे ?"

"कहो।"

"करोगे ?—कहती हूँ, तुम्हारा उसमें कुछ नहीं जायगा। कहो,—करोगे।"

"करूँगा।"

"जीजी आयेंगी तो पहले मेरे यहाँ खायेंगी। मैं पहले खिलाऊँगी,—चाहे कुछ हो, मैं खिलाऊँगी। न होगा तो तुम्हारे घर आकर मैं बनाऊँगी। पर पहली रोटी वे मेरे हाथकी खायेंगी। इतनी अरदास मेरी कबूल रखनी होगी। कहो, हाँ।"

सत्यने अपना सारा बल कण्ठमें खींचकर कहा—'हाँ।'

इस 'हाँ' को सुनकर कट्टो पत्थरकी मूर्ति-से खड़े सत्यके पैरोंमें जाकर लोट गई।

एक बार और लोटी थी। तब शाम थी, अब दोपहर है। तब स्वर्गके द्वार खोले गये थे आमन्त्रण पूर्वक, अब आमन्त्रित कट्टोके मुँहपर ही ढाँप दिये गये हैं। खुले थे तब भी वह इन पैरोंमें लोटी थी, बंद कर दिये गये हैं तब भी वह इनमें ही पड़ी है। उसकी यह कैसी समझ है!

कुछ देर सन्नाटेके बाद आवाज आई—जाऊँ ?

सत्यने भरी आवाजसे कहा—"जाओ।"

"जाऊँ ?"

"जाओ।"

तब वह कट्टो उठी। आँसू ढरकना बंद हो गया है, मेहके बाद अब चाँदनी मानों मुँहपर थिरकनेको रही है,—यह अब ताजी धुली-हुई कट्टोकी किरण-

कौमुदी मानों हँस देगी। बोली—बिहारी बाबू, घरतक साथ चलोगे? काम है।

विहारी बाबू मानों जग उठें, फिर भी अधजगेसे कट्टोके पीछे पीछे चल दिये।

२७

वही कमरा है, वही आला है, वही कट्टो है। फिर भी वही नहीं हैं। उसी कटोरेमें वैसा ही सफ़ेद दूध है,—पर जैसे जादूका फूँक फेर दिया गया है, और वह दूध नहीं हालाहल है। इस कमरेकी स्मृति, यह सामनेका आला जिसमें उस दिनका छः पैसेका दर्पण रक्खा है और वह कंघा और टिकुलीकी डिबिया,—मानों सब उसको चिढ़ाते हुए उससे कह रहे हैं, 'तुमने हमें धोखा देकर रक्खा है, हम पराये हैं! पराये हैं!!' स्मृतियाँ उमड़ उमड़ कर कह रही हैं 'तुम स्वप्नकालमें हमसे खूब खेलीं। अब तुम्हें जगा दिया है, अब हम जाती हैं। जाती हैं,—कहीं और।' वह सब अँगूठा दिखा दिखा कर मानों कह रही हैं, 'कहीं और! कहीं और!!' जो अभी बीते क्षण तक सत्य था, वह सब कुछ इन स्मृतियोंका साथ देकर उसे बिरा रहा है, जा रहा है, कहीं और, कहीं और!!!'

ठठोली करते हुए, पराये दिखते हुए, इस कमरेमें ही बिहारी खड़ा है।

कट्टोने अब बिहारीको देख पाया,—ऐसे विस्मित-चकित भावसे देखा मानों पूछना चाहती है, 'तुम कौन हो, क्यों आये?—क्या चाहते हो?' बिहारीने निस्संकोच 'कट्टो' का हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा," मैं गरिमाका भाई हूँ। समझी कौन हूँ? अब 'कट्टो' के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा।"

"जो चाहे कहो, विहारी बाबू। तुम उनके मित्र हो, और मेरे लिए सब कुछ हो।"

बिहारीने बड़ी तीक्ष्ण जिज्ञासा, बड़ी आशंका, बड़ी आकांक्षासे पूछा—

"कट्टो अब क्या...?"

"पहले एक थे, अब दो हो गये हैं। दोकी सेवा करूँगी। मेरा तो काम और बढ़ गया है।"

बिहारी कहना चाहता है, सत्य इस योग्य नहीं है। पर सामने खड़ी इस अकिंचनके आगे मूर्तिपर हाथ रखते डर लगता है। कट्टोकी खातिर वह

सत्यको अब कुछ न कहेगा।

"सत्य अब तुम्हारी सेवा नहीं लेगा, कट्टो। न तुम्हारी जीजी यह होने देगी।"

"न सही, मेरा काम मेरा काम है। तनसे नहीं तो मनसे तो करूँगी ही।"

इसी क्षण भीतर कुछ उठा और बिहारीके शरीर और आत्माको एक रंगमें रंग गया। परमात्माने हम दोनोंको साथ ला दिया है,—अब दोनों धाराएँ एक होकर बहेंगी, उनका कुछ और काम न होगा। अपनी संयुक्त-जीवन-धारापर किनारे किनारे तीर्थ स्थापित करें और यह पुण्य गंगाकी तरह लोकमें बहती निकलती चली जाय,—कल्याण सरसाती हुई, खेतीको हरियाती हुई, लोगोंको नहलाती हुई, लहराती हुई अनन्त सागरमें विलीन हो जाय। बिहारी एक क्षण इस लोकोत्तर भावनाके प्रबल प्रस्फुटनमें आत्म-सात् हो गया। फिर बोला—

"कट्टो, एक साक्षात्कार हुआ है।...."

यहाँ उसका कण्ठ काँप गया और सुर लरज आया।

"बिहारी बाबू!...."

वह भी इतना कहकर चुप हो गई। रुककर फिर कहा—

"यह न समझो, मैं तुम्हें गलत समझती हूँ। तुममें तो कुछ समझनेको है ही नहीं। जो बाहर है, वही भीतर भी है। भीतर वही विनोदका झरना झरता रहता है, जिसका आधा जल आँसूका और आधा हँसीका है, और जिसमेंसे हर बात आर-पार दिखाई देती है। लेकिन अनहोनी घट नहीं सकती, होनी टल नहीं सकती। जो हो गया,हो गया। उसे मिटाना अब बससे बाहरकी बात है। जो चढ़ चुका,—उसे चरणोंमें वापिस खींच नहीं ला सकती। वह अब मेरा नहीं रह गया। लेकिन...."

"लेकिन...?" बड़ी व्यग्र उत्कंठासे बिहारीने कहा—

"लेकिन एक बात है। सोती हूँ तो आकाश-गंगाको ऊपर खिलखिलाते देखती हूँ। वह हमपर नीचेको देखती रहती है। हमारी जगतकी यह गंगा भी ऐसे ही ऊपरको देख देखकर बहती रहती और हँसती रहती है। मुझे लगता है कि ये दोनों गंगाएँ एक दूसरेको देख देख कर ही जीती हैं। इस सारे अनन्त शून्य,—किसी गणनामें न आ सकनेवाले आकाशको भेदकर इनकी हँसी एक दूसरेको परस्पर कुशल-क्षेम दे आती है। दोनोंका मन एक

ज्यादती और जायदाद की सुरक्षा में बंद हैं।

हैं, नियम एक है । मालूम होता है, दोनों आपसके समझौतेसे इतनी दूर जा पड़ी हैं कि दोनों एक ही उद्देश्यको दो जगह पूरा करें । दूर हैं, फिर भी पास हैं । अलग हैं, फिर भी एक हैं । बिहारी बाबू . . बिहारी बाबू, क्या यह नहीं हो सकता ?—क्या हम भी दो ऐसे नहीं हो सकते ? दूर, फिर भी बिल्कुल पास । अलग, फिर भी अभिन्न । दो, फिर भी एक । एक ही उद्देश्य, एक ही जीवन-लक्ष्यमें पिरोये हुए ? ”

बिहारीने कहा—कट्टो ! . .

कट्टोने कहा, “ आओ, मेरे साथ बँधते हो ? मैंने तुम्हें देखा, तुमने मुझे देखा । तुमने मेरी भाषा भी देखी, भाव तो देखे ही । 'वह' नहीं जानते मैं कितनी पढ़ गई, कोई भी नहीं जानता, मैं भी नहीं जानती थी । अभी जानी हूँ, जब तुम जाने हो । इतनी हिन्दी जाननेके बाद कुछ करोगे तो तुम्हें भी मदद पहुँचा सकूँगी । इतनी भाषा, अम्माँके बाद, मुझे रोटी भी दे ही देगी । इस तरह, पढ़ने-लिखनेके लिहाजसे भी तुम्हें मुझपर शर्म करनेकी जरूरत नहीं । बोलो, बँधते हो ? ”

“भाड़में फेंको पढ़नेको ! . . . बँधता हूँ । ”

“बिहारी बाबू, बड़ा कठिन यज्ञ सम्पन्न करनेके लिए बँधते हैं हम । सोच लो तुम । बहुत लम्बा जीवन आगे पड़ा है . .”

“तुम मुझसे छोटी हो । तुम्हारे लिए व्रत और कठिन . .

“मुझपर तो आ पड़ा है, पर तुम . . ? ”

“कट्टो, बँधता हूँ . . । ”

“ उस यज्ञके लिए सबसे सुंदर शब्द है मेरे पास 'वैधव्य' । अर्थ है, 'आत्म-आहुति । ' बँधते हो ? ”

“ बँधता हूँ ।”

कट्टोका बायाँ हाथ बढ़ा, बिहारीका दायाँ । दोनों एकमें गुँथ गये ।

“ हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं । हम एक होंगे,—एक प्राण, दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा । ”—कट्टोने कहा ।

“ हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म

बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण दो तन। कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा।" बिहारीने दोहरा दिया।

कट्टोने कहा—

"आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ। वैधव्य सार्थक हुआ।"

बिहारीने कहा—

"यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो-बिहारी सदा एक दूसरेके प्रति कट्टो बिहारी रहेंगे, न कम न ज्यादे।"

फिर बिहारीने कहा, "कट्टो, कहो, जो दूँगा, लोगी।"

"जो दोगे, लूँगी।"

कुछ देर वह चुप रहे। फिर कट्टोने थोड़ा हँसकर कहा—

"हमारे जीवनका अकेलेपनसे अनायास इस तरह उद्धार हो गया। अब आओ, मेरा एक काम करो। तुम घर कब जा रहे हो?"

"आज रात, नहीं तो कल सवेरे जरूर।"

कट्टोने तिसपर टिकुलीकी वह डिबिया ली, कंघा और शीशा, और हाथोंसे वह दो लाल चूड़ियाँ निकालीं, उन्हें एक पोटलीमें बाँध दिया, कहा—

"तुम्हारी बहिन,—क्या नाम है?—गरिमा। वही मेरी जीजी। उन्हें यह जाकर देना। कहना—एक कट्टो है, नटखट लड़की, गँवारिन, उसने ये दी हैं। वह उसके मास्टर रहे हैं और वह उसकी जीजी हैं। कहना मैंने उनसे वायदा ले लिया है, पहले जीजीको मेरे यहाँ आना होगा। यह भी कहना, कट्टोको उन्हें अँग्रेजी पढ़ानी होगी। और कहना कट्टोको असीस भेजें। सेव-काईका मौक़ा मिलेगा, एक बार तो उससे पहले भी आशीर्वाद दे ही दें।... यह सब कहोगे न? कहो—कहोगे।"

"जरूर कहूँगा, यह सुहाग कट्टोका उतरन है—।"

"हैं हैं। यह क्या कहते हो? यह तो मैंने जबर्दस्ती चढ़ा लिया था। उतरन कैसे हुआ? नहीं नहीं, बिल्कुल नहीं। मेरे पास शुभसे शुभ जो चीज है, दे रही हूँ।"

"सब कहूँगा। और कहूँगा, कट्टोके साथ मेरा वरण हो चुका है।"

"कह देना।"

"तो मेरा काम हो चुका ?"

"हाँ।"

"जाऊँ ?"

"जाओ,—माँके पैर छूते जाना।"

"जानेसे पहले कुछ दोगी नहीं ?—यह अच्छा वरण !"

"क्या दूँ ?"

"कुछ भी तो—"

"अच्छा लो...."

तभी उसने एक आसनपर बैठकर झट-से चर्खेपर सूत काता। हल्दीके रंगमें उसे रंगकर माला बनाई। दोनों हाथोंसे वरमालाके रूपमें पकड़ा, धोतीका छोर जरा आगेको किया, और एक खट्टी मीठी हँसी हँसके बिहारीके गलेमें डाल दिया। फिर एक नमस्कार किया, चरणोंमें हाथ लगाया और फिर उस हाथको अपने माथेसे छुआ लिया।

इस समारोहमें बस उस कमरेकी स्तब्ध शून्यताने मानों अपनेको खोकर मौन योग दिया। बाहरी आँख इस शुचि व्यापारपर पड़नेसे बची रहीं। इस ग्रंथि-बंधनकी एकमात्र साक्षी होकर अचर-प्रकृति मानों जी-ही-जीमें मग्न-मूक थी।

"माला सत्यको दिखाऊँगा।" बिहारीने मन्त्र-बद्धताको तोड़कर कहा।

"तुम्हारी है, जो करो।"

"जाता हूँ, कब मिलना होगा ?"

"देखो—"

"अच्छा, कट्टो, प्रणाम बिहारीका प्रणाम। प्रणाम लो और यह लो।" एक बुरी तरह गुड़ीमुड़ी हुआ कागज थमाकर बिहारी निकला, माँकी चरण-रज ली, रुका नहीं, चला गया।

सौ रुपयेका नोट खोले कट्टो कुछ सेकिंड खोई-सी खड़ी रही, फिर चौकेकी संभालमें चली गई।

———

२८

बिहारी अपने घर पहुँचा। बाबूजी बैठकमें ही बैठे हैं।

ताँगेसे उतरा नहीं कि पूछा, "आ गये !..." अर्थात्–'क्या लाये ?'

"हाँ, आ गया।"

"क्या बात रही ?"

"अभी आता हूँ, जरा यह सामान....ऊपर...."

"हाँ हाँ।"

बाबूजीने देखा कि सामान नौकर ले ही जा रहा है, एक मिनटको तो यहाँ बैठ ही सकता था, बात कहनेमें देर लगती कितनी है, पर नहीं, ऊपर !... खैर, लक्षण बुरे नहीं हैं।

बाबूजीसे बात तो कहेगा ही, पर कट्टोका काम ख़त्म करनेकी उसे जल्दी है। सबसे पहले कट्टो, फिर और कोई। जरा-सी तो पोटली है, जेबमें डाल-कर ऊपर पहुँचा। पुकारा—"गिरी !—गिरी !...."

गिरी चौकेमें है। बालसुखा-सुखा कर अभी गई है देखने कि महाराजिन सब कुछ ठीक कर रही है या नहीं। महाराजिनको इतना कह चुकी है, फिर भी कुछ न कुछ गड़बड़ हो ही जाता है। गरिमाको क्या वह जानती नहीं है ? ठीक नहीं करेगी तो दिल्लीमें, महाराजिनोंकी कमी पड़ी है ? सो ही बात गरिमा अब बारहवीं बार महाराजिनके कानके रास्ते अक़लमें प्रवेश करा देनेको वहाँ पहुँची है। मोटी, फूले नथनोंवाली, सागके बाज़ारमें जो सब कुँजड़ोंसे बाज़ी ले जाती है, वही कुसलो इस छोटी मालकिनके सामने थर-थर काँपती है। इस देहके कम्पनमें अगर नोन बटलोईमें गिरते गिरते खीरकी पतीलीमें पड़ जाता हो तो पाठक अचरज न करेंगे और उसे क्षमा कर देंगे। लेकिन जिन्हें वह खीर खानी पड़ती है, उन सबके रोषकी संपूर्ण स्वत्वाधिकारिणी प्रतिनिधि होकर जब वह छोटी मालकिन साँपिनकी तरह चमकती और फुफकारती महाराजिनके सिरपर आ खड़ी होती है तो अगर नोन खीरमें नहीं पड़ता, तो मिर्च दालके बजाय आँचमें पड़ जाती है। तब महाराजिन खाँसी और छींकसे व्यग्र होकर अपनी सफाई देनेमें अक्षम हो जाती है और छोटी मालकिन भी अपने गुस्सेको आधा निकला हुआ और आधा पेटमें ही खौलता हुआ लेकर अपित पलायन कर जाती है। तब वह झींकती सी

जाती है और भींकती भी जाती है। ऐसा ही साधारण संयोग इस समय भी घट गया था। चौकेमें उसने भैयाका आना सुना। तभी मिर्चाहुति चूल्हा-ग्निमें छूट गई। और तभी वह बाहर दौड़ी और तभी बोली —

"मैं...छिंः—छीं...भैया...छिं..."

भैयाने यह अपनी अगवानीपर लगातार छींकोंकी सलामी सुनी।

"यह क्या मामला है ? "

"वह कम्बख्त—आक् छिंः, डैम...छिंः..."

"यह छिंः और सुशब्दोंकी बौछार मेरे आते ही... "

"यह डैम् रैस्कल—आ...आ...क्...छिंः.."

"मुझे माफ़ करो, मैं चला जाता हूँ भई।"

" शैतान, कलसे ही.. छिंः छिं.. छिंः.. छिंः.. ;"

छींकोंका प्रकोप शांत हुआ तब बिहारीने संबोधन किया—

"गिरी... "

" वह महाराजिन कलसे नहीं रह सकती। म कहती हूँ..

"मेरी बात सुनती हो या.."

"सुनती हूँ, लेकिन तुमने ही.. "

"हाँ, मैंने ही सृष्टि रची, और मैं ही बिगाड़—"

"तुमने ही यह महाराजिन रखवाई थी। "

"अब दोष नहीं होगा, तो। बस, अब तो स्वस्थ हुई?—या अब..."

"स्वस्थकी बात नहीं, कोई न कोई गड़बड़ कर ही देती है।"

अच्छा, अब इस अध्यायको खतम करो। प्रकोप-पर्व समाप्त, नवीन पर्व आरम्भ। सुनो—"

सारी आकृति और चेष्टामें 'सुनाओ—'का भाव लेकर वह सुननेको खड़ी हो गई।

"मै वहाँसे आ गया हूँ। तुम्हारे लिए सोहाग-कोथली ले आया हूँ। लो!"

बिहारीने वह पोटली खोलकर गरिमाके आगे फैला दी।

"किसने दी ?—उस...?"

"हाँ उसने दी। जानती तो हो उस कट्टोको ?"

गरिमा कट्टोको खूब जानती है। सत्यका रुख अब तक वह खूब समझती जा रही थी। जानती थी,—जड़में कट्टो ही है। यह जानते ही उसने उसे अपने प्रतिद्वंद्वीके रूपमें स्वीकार कर लिया था। बाबूजी और सब जोर लगा रहे हैं, तब भी वह रुख अनमनाया ही हुआ है,—यह देखकर इसने समझ लिया प्रतिद्वंद्वी प्रबल है। तभी इसके बड़प्पनने उठकर इस हलकी-सी उठती हुई स्पर्द्धाको तीक्ष्ण धार दे डाली। 'वह गँवार छोकरी मेरा मुकाबला करेगी—मेरा?' यह भाव उसे दिन-रात सुलगाये रहने लगा। यह सुलगता हुआ भाव कभी महाराजिनके सिरपर फूटता था, कभी माँके, और कभी बाबूजीके। गरिमा सत्यको चाहती थी, इसमें सन्देह नहीं। वह युवती थी तिसपर पढ़ी-लिखी। और सत्य भी शकलमें बिल्कुल अपरूप नहीं था। और अनिच्छा यौवनका स्वभाव नहीं है। लेकिन जब कट्टोका नाम सुना, और वह तकिया देखा, तब यह साधारण-सा खिंचाव एकदम ईर्षाकी धारकी तरह पैना हो उठा। तब यह सत्यको प्यार करनेपर लाचार हो गई। और यह प्यार ही काटने और घायल करने लगा।

अब बिहारी पक्की खबर ले आया है, और कट्टोने दी हैं कुछ चीजें! इन सबको अपनी जीतकी भेंटके रूपमें उसने स्वीकार किया। कट्टो कैसी कट गई होगी, देखो न, चली थी मुझसे बदने?—आदि आदि चहकते विचारोंमें वास्तव संवादकी खुशी मानो खो गई है। सत्यसे विवाह होगा, यह बात तो जैसे उसके ध्यानमें है ही नहीं, मैं जीती हूँ, कट्टो आखिर हार गई है,—इसीकी नशीली खुशीमें खुश है।

"तो यह उसीने दीं?"

"हाँ—"

"वह क्या यह जानती नहीं, मैं उस जैसी गँवारिन नहीं हूँ?"

"वह कुछ नहीं जानती..."

"मेरे लिए इनका उपयोग कुछ नहीं, सिवाय...फेंक देनेके!..."

"हैं हैं, फेंकना नहीं, मेरी क़सम।"

"य' कंघा, य' शीशा, और ओ-यह कुंकुम!—छिः!—मैं क्या करूँगी इनका?—बड़ी सौगातें हैं न?"

"गिरी, ये सौगातें ही हैं। मेरी क़सम जो इन्हें फेंका तो।"

"ऐसे इनमें क्या लाल हैं ? कितने पैसेकी होंगी ये सब ?"

"गिरी, कट्टोने कुछ कह भी दिया है तुम्हें कहनेको..."

"क्या क्या, सुनूँ तो ?"

"कहा है कि कहना, 'वह मेरी जीजी हैं। यहाँ आयेंगी तो मैं उनसे अँग्रेज़ी पढ़ूँगी और टहल करूँगी।' और...और गिरी, तुम्हें वहाँ पहली रोटी उसके घर—उसके हाथकी खानी पड़ेगी। कट्टोने सत्यसे वायदा ले लिया है। और,—और उसने आशीर्वाद माँगा है।"

यह बात गरिमाके भीतर तक पहुँच गई, लेकिन जैसे भीतर उसको आश्रय नहीं मिला। गरिमा इस बातको कुछ समझ पाई नहीं और उसको लेकर वह उधेड़-बुनमें पड़ गई। इसके कहनेका क्या तात्पर्य है, कैसे वह कह सकी यह बात !—सो उसकी समझमें नहीं बैठता। उसने कहा—

"उसे मानों और कुछ कहनेको नहीं था ?"

"गिरी, एक बात कहूँ ?"

"कट्टोके बारेमें ?—कहो, जो कहना चाहो।"

वह अब कट्टोको रोषका पात्र नहीं देखती। कभी उसके बारेमें सोचा था,—मानों उसपर अनुग्रह किया था। अब मानों उस उपेक्षित चिन्ताकी आवश्यकता शेष हो गई है। अब वह कृपाके साथ उससे सहयोग-सम्बन्ध स्थापित कर लेगी। अब काहेका खिंचाव,—काहेका तनाव ? मानो, जो पहले रोष किया, अब अनुग्रह दिखाकर उसका सारा बदला चुका डालना चाहती है। इसी लिए आग्रहके साथ उसने कहा, "कहो जो कहना चाहो। न हो, तो कहो वह कैसी हैं। मैं उसे अब प्यार करूँगी।"

"गिरी, वह सुन्दर नहीं है। पढ़ी-लिखी ज्यादे नहीं है। हम-वह बँध गये हैं, मैंने विवाह किया है।"

इसके लिए गरिमा तैयार नहीं थी। यह सौभाग्य क्या कट्टोके योग्य है ? कट्टोको प्यार तो करेगी,—करती; पर यह एकदम इतना सौभाग्य !-कट्टोने यह अपनी योग्यतासे कमाया नहीं हैं, निस्संशय छलसे प्राप्त कर लिया है।—इतनी उसकी स्पर्द्धा ! उसने कहा—

"ओह तुम्हें क्या हो जाता है, भैया। उसने जादू कर दिया है, चुड़ै... कहींकी !"

"हाँ, जादू किया है। वह जादूगरनी है। मैंने ही उसके जादूसे सत्यकी रक्षा की है। पर रक्षा-रक्षामें खुद फँस बैठा।"

"यह क्या पागलपन है..? "गरिमा बोली।

"क्या पागलपन है!—"कहते कहते बाबूजीने प्रवेश किया। अब तक बिहारी लौटा ही नहीं, यह कैसी बात है? आखिर उकताकर बाबूजी खुद ऊपर चढ़ आये हैं। गरिमाकी तरफ़ देखकर कहा—

"...यह पागलपन क्या...?

"बाबूजी, बिहारीने ब्याह कर लिया है। वह कट्टो..."

बाबूजी चौंके, "क्या?"

"वह कट्टो लड़की, आपने सुना होगा..."

बाबूजीके मुँहसे निकला—"बिहारी?"

बिहारीने अविचलित अकम्प स्वरमें कहा—"जी।"

बाबूजी क्षणेक गुम रहे। फिर क्या हो गया?—बोले—

"बहूको कब लाओगे घरमें?"

"बाबूजी, वह घर नहीं आयेगी, वहीं रहेगी।"

"क्या?" जोरसे झटककर बाबूजीने कहा।

"वह वहीं रहना चाहती है।"

"और तू?"

"अभी तो इम्तहान देकर घूमने जाऊँगा। आप फ़िक्र न करें, फ़ेल अब कभी न हूँगा। घूमनेमें दो साल लग जायँ,—शायद ज्यादे भी। लौटकर आपसे परामर्शके बाद, देखूँगा, क्या करूँगा।"

"और बहू?—नहीं, वह यहाँ रहेगी। मेरी बहू वहाँ रहेगी, वैसी रहेगी, और यह रुपया यों भरा भरा सड़ेगा? नहीं वह यहाँ रहेगी, बिहारी।"

"बुला भेजिएगा। आये, तो आ जायगी।"

"मैं पहेली सुलझाना नहीं चाहता।—कैसा यह ब्याह है तेरा?

"हमारा ब्याह हुआ है इसलिए कि हम दूसरा ब्याह न करेंगे। साथ रहे रहे, न रहे न रहे,—कुछ बात नहीं। क्योंकि हम हमेशा साथ हैं।"

"यह पागलपन ख़तम करो। जाना हो जाओ। पर यह पागलपन मैं नहीं सुनना चाहता। मैं तुम्हें किसी बातसे नहीं रोकूँगा। पर ऐसी दुनियासे परेकी

बातें मेरे सामने न किया करो।"

तब बाबूजीने घरके आँगनमें जाकर बिहारीकी माँसे पुकार कर कहा—

"सुना कुछ? बिहारीने ब्याह कर लिया है। बहू वहीं गाँवमें रहेगी,-- बिहारी लापता होगा। ऐसी बात तुमने सुनी है कभी?"

"ब्याह हो गया—किसीको पता भी नहीं! और बहू वहाँ, और वह यहाँ भी नहीं वहाँ भी नहीं!!—यह कैसा किस्सा कह रहे हो तुम?"

"कैसा है, सो बिहारीको ही बुलाकर पूछ लेना।"

कहकर बाबूजी बैठकमें जाकर आजके अखबारमेंसे दुनियाकी असारता खोजने लगे। गरिमाकी बात, हठात्, भूल ही गये।

२६

ब्याह हो गया है। बड़े घरकी बेटी,—खूब अँग्रेजी-पढ़ी बहू गाँव आई है। दुनियाँका आठवाँ आश्चर्य उठकर मानों गाँव आ गया है।

पर ठहरो, नई--नवेली बहूको देखनेकी उतावली न करो। औरतोंकी भीड़ उसे घेरे है उसे छँट जाने दो, और कट्टोको जरा छुट्टी पा लेने दो। उसके साथ--साथ अकेलेमें चलेंगे।

इधर कट्टोकी जान--पहचान नई बना लें। वह अब वैसी ही पेड़-वाली कट्टो बन गई है। कुछ आया था जिसके कारण वह लहँगा--ओढ़ना पहनकर कौनेमें दुबकी सिमटी बैठे रहनेकी बात सोचने लगी थी, लेकिन वह चला गया,—चलो अच्छा ही हुआ,—और अब फिर वह वैसी ही भागने-उछलने, चहचहाने लगी है।

जीजी कबकी आई हैं,—पर उसे फुर्सत नहीं निकल रही है। बात यह है कि वह इतनी जनियोंके बीचमें जायगी तो चुपचाप बैठे रहना पड़ेगा,-और यह उससे न होगा। वह तो जीजीसे मचलना चाहती है, अभी कुछ जीजीसे उलझे बिना उससे कैसे रहा जायगा? बाल भी तो उनके काढ़ूँगी, उनकी चीजें भी देखूँगी,--सब उनकी किताबें भी, गहने भी। इसीसे वह कुछ न कुछ धरा-सँभाल किये ही जा रही है।—पर ये औरतें भी कैसी हैं, जमके ही बैठ गई हैं, टलती ही नहीं! अब कट्टो भीतर ही भीतर कुलबुलाते कुलबुलाते तंग हो गई है। बैठी हैं तो बैठी रहो,—यह तो अब जायगी ही।

लो, तैयार हो जाओ।

प्रौढ़ा और नवीना, मुखरा और मौना उज्ज्वला अपितु श्यामलकांता आदि विविध बखानकी स्त्रियाँ विभिन्न वर्णों और वर्णनोंके साज और सिंगार पहने, अचरजसे थोड़ा सम्मान-संभ्रम-पूर्ण अंतर छोड़े 'एक' को चारों तरफ़से घेरे बैठी हैं। वह एक वहू बनकर आई हुई गरिमा है। देखो तो, कैसा ओढ़ना ओढ़े बैठी हैं और लहँगा सिमटाकर ऐसा कर लिया है कि दीखे ही नहीं। मानों इसे और कुछ पहनना आता ही नहीं, सदा यही पहिना की है, और सदा मानों यही कपड़े पहिने, यों ही बैठी रही है। गहने एक एक अंग-पर झलमल झलमल कर रहे हैं। आँखें सामने किसी अज्ञात बिन्दुके भीतर घुसनेका प्रयास कर रही हैं, थक जाती हैं तो बायें हाथके कंगनकी एक उठी हुई नोकपर आ ठहरती हैं। बहू इस तरह इतनी दृष्टियोंसे जकड़ी हुई बैठे बैठे थक गई है, चाहती है इनकी नजरें कुछ ढीली हों, कुछ बातचीत हो, जिससे उसके चारों ओर फैला हुआ यह विशिष्टताका परिवेष्टन टूटे और उसे आदमीकी तरह कुछ करने-धरनेका अवकाश मिले। पर ये सब आपसमें बोला सकती हैं, उससे नहीं बोल सकतीं,—न जाने यह कहीं अँग्रेजी बोल पड़े!—वे तो बस इसे देख सकती हैं।

बहू उठ सकती नहीं, और अब बैठी भी रह सकती नहीं। वह बड़ी व्यथा पा रही है। कितनी बार उस बिन्दुसे हटकर कंगनेपर और कंगनेसे उस बिन्दुपर लौट लौट जाकर उसकी दृष्टि थक चुकी है। तभी सुनाई दिया—

"जीजी!"

उठ पड़ी। देखा, जरूर वही है। अनायास कह उठी 'कट्टो!" अनायास वह खिल गई; अनायास हाथ फैल गये,—मानों स्वागतके लिए; एकदम, सब कुछ बह गया; अनायास इस कट्टोको बैठानेके लिए मानों हृदय किवाड़ खोल-कर सन्मान-सहित खड़ा हो गया।

कट्टो दौड़ी आई, उस आलिंगनमें बँध गई।

"जीजी!"

"कट्टो!"

जैसे दो सरिताएँ मिल गईं, दो लताएँ मिल गईं, दो कोमलताएँ मिल गईं।

स्त्रियोंने देखा कि यह क्या? कट्टो बाहर कभी नहीं गई, बहू यहाँ पहली बार आई है, फिर यह क्या?

वे क्या जानें कि दोनोंके हृदय,—एक ओरसे चाहे स्पर्द्धा और ईर्ष्यासे हो, और दूसरी ओरसे श्रद्धा और अर्चनासे बहुत पहलेसे एक-दूसरेसे परिचित हैं। और वे क्या जानें स्पर्द्धा और श्रद्धा, और ईर्ष्या और अर्चना एक ही भावनाके ओर और छोर हैं, ऋण और धन दो सिरे हैं। उन दोनों सिरोंके बीचमें रहने और बहनेवाला तत्त्व है आकर्षण।

३०

दोनों अकेली हैं।

"जीजी, मेरी बात उन्होंने कही थी?"

"कही थी। ब्याहकी भी कही थी।"

"वह तो हँसी बहुत करते हैं। हमेशा हँसी!—यह कोई ठीक बात है?"

"अच्छा, उसकी ठीक बात नहीं है। फिर तू ही बता ठीक बात।"

"जीजी, कुछ नहीं। भला, ब्याह कैसा? जीजी, जानती नहीं तुम, मैं तो विधवा हूँ। विधवाओंका ब्याह होता है!—छिः।"

"तुम तो एकदम ब्याहपर जैसे लानत भेजती हो!—फिर क्या बात है?"

"कुछ बात भी हो जीजी!—बिहारी बाबू तो यों ही..."

"देख, कट्टो, छिपेगी तो ठीक नहीं। मैं फिर तेरी कुछ भी न हुई? मैं तेरी जीजी नहीं हूँ, भला? और जीजीसे तू अपनी बात न कहेगी?"

"हमने प्रतिज्ञा की है, वह कुँआरे रहेंगे, मैं ऐसी ही रहूँगी। और हम दोनों अपनी बात नहीं सोचेंगे, दूसरोंकी सोचेंगे। मुझे तो सोचनेके लिए तुम हो, और तुम्हारे 'वे' हैं। जीजी, उन्होंने तो मुझे पढ़ाया है। मैं भला क्या जानती थी, और वह न होते तो आज क्या मैं तुम्हें जान पाती? बिहारी बाबूसे भी अपने आपमें ही सुखी नहीं रहा जाता। बिहारी बाबू तो दुनियामें बिहारके लिए ही बने हैं। वह क्या एकके होने लायक हैं,—सबके हैं। मैंने यही देखकर उनके साथ प्रतिज्ञा बाँध ली। बस, यही बात है जीजी,—इसे बिहारी बाबू ब्याह कह लें या कुछ भी कह लें।"

"यह अद्भुत बात तुझे कैसे सूझी कट्टो?"

"अद्भुत क्या है जीजी इसमें? बिहारी बाबूको देखकर मुझे ऐसा

लगा कि उनकी आत्मा किसी एकका सहारा पाकर कल्याण-रूप होकर व्याप्त हो जाना चाहती है। और वह उस 'एक' को खोजते फिर रहे हैं। मैंने अपनेसे पूछा, 'क्या मैं वह 'एक' हो सकती हूँ?' मनने कहा, 'क्यों नहीं?' जीजी, सो यह बात हिम्मत करके मैंने कह डाली···"

"तुमने यह आत्मा पढ़ना कहाँ सीखा? देखती हूँ, तुम तो बड़ी होशियार हो!"

"जीजी, तुम तो ठट्ठा करती हो! आत्मा क्या कोई सबकी पढ़ी जाती है? और क्या कोई सीखा जाता है? बिहारी बाबू तो मुझे ऐसे दीखे जैसे छापेके अच्छर, कोई साफ़ साफ़ एक एक पढ़ ले।"

"तो फिर यह ब्याह कैसे हुआ? वह तो कहते थे, ब्याह हुआ है और तुमने उनपर जादू फेरा है।"

"जीजी, वह तो बात ऐसी ही ठट्ठेसे कहा करते हैं। हम कब चाहते हैं, लोग उसे ब्याह कहें, ब्याह समझें। हाँ, इतना है कि मैं उनके और वह मेरे जीवनसे मिल गये हैं।—हम बँध जो चुके हैं एक ही प्रतिज्ञामें। उनसे मेरा और मुझसे उनका जीवन बनेगा और पूर्ण होगा। उनकी वजहसे मैं इकली भी अकेली न हूँगी, और हम एक दूसरेके होकर सबके होनेकी राह पा लेंगे। मैं उनके लिए मर जाऊँगी, ऐसे ही वह मेरे लिए मिट जायेंगे।······पर जीजी, तुम मुझे ऐसे देख रही हो जैसे मैं बिल्कुल पगली हूँ। बिल्कुल पगली थोड़े ही हूँ, हाँ तुम्हारे जितना तो नहीं जानती। सो क्या उस बातपर तुम मुझे यों देखोगी। न न, मुझपर तुम बिगड़ नहीं पाओगी।···अच्छा, चलो अब जीजी, घर चलो हमारे। तुम रोटी तो बनाना क्या जानती होगी, क्या काम पड़ता होगा वहाँ तुम्हें ऐसा। बैठी रहना, बताती जाना, मैं बनाती रहूँगी। तुमसे कहा न होगा उन्होंने, आज तो तुम्हें मेरे ही यहाँ खाना खाना पड़ेगा। हाँ ···और भी तो बात है,—आशीर्वादकी······आशीर्वाद दिया तुमने?—अब यहाँ देना पड़ेगा।—पहले दे दोगी, तब रोटी मिलेगी।"

यह कट्टो ऐसी बात करती है कि कहींसे बचनेकी राह ही नहीं छोड़ती। सवाल भी करती है, और जवाब भी अपने ही आप दे देती है, जिससे 'नाहीं' करनेका मौक़ा नहीं रहता। गरिमा इसकी यही बात देख देखकर अचरज कर रही है। गरिमासे जो चाहे करवा लेती है, और हर बातमें अपनी ही चलाती है,—यह ऐसे ढंगसे कि कुछ कहते नहीं बनता, बिल्कुल अखरता ही नहीं।

यह आशीर्वाद देना-दिवाना तो किसी शिष्टताके 'कोड'में उसने सीखा नहीं। न वह आशीर्वाद देनेको अत्यन्त उत्सुक है। पर—

"जीजी, चुप क्यों हो ? देखो, ऐसे। मैं बैठती हूँ घुटनेके बल, फिर पैरोंमें पड़ूँगी, तुम मेरे सिरपर हाथ रख दोगी,—प्रेमसे जैसे माँ हो। फिर मैं उठ जाऊँगी, और मुझे गले लगा लेना। पर देखो, असली मनसे करना, नहीं तो मुझे फिर कसरत करनी पड़ेगी। जबतक ठीक नहीं होगा, तबतक छुट्टी नहीं दूँगी।"

कट्टो बात तो बहुत बड़ी बड़ी करती है, पर बोलती बिल्कुल बच्ची-सी है। गरिमाने अपने लिए 'माँ' सुना, और उसका हृदय न जाने एक कैसे रससे भीना हो गया। अब तो सचमुच इस लड़कीको वह कंठसे लगा लेना चाहती है। इस लड़कीसे तनकर रहा नहीं जायगा,—वक्त बक्तपर बहुत पण्डिताईकी बात कर जाती है तो क्या ? उसके भीतर जो प्रसुप्त मातृत्व है, इस लड़कीने अपने लड़कपनकी मीठी बोलीसे छेड़कर उसे चंचल कर दिया है। तानसेनने अपने कण्ठके दर्दसे पत्थरोंको पिघला दिया, आर्त्तोंकी पुकारने न्याय-कठिन परमात्माको पिघला दिया,—तब कट्टोकी हठ-मचलने शिक्षा-कठिन गरिमाको पिघला दिया तो इतनी बड़ी बात क्या हुई ?—मातृत्वके गौरव और स्नेहसे कोमल गरिमाने कहा—"कट्टो, म···"

लेकिन तबतक तो वह घुटनेके बल बैठ गई थी। उसने माथा पैरोंमें लगाया,—पैर खींच लिये और गरिमा पानी पानी हो बह चली।

स्नेहार्द्र-कंपित वाणीसे गरिमाने कहा—

"हैं हैं, कट्टो,···"

पर कण्ठ बहुत भर रहा था,—हाथसे सिरको थपका और फिर दोनों हाथोंसे उठाकर आलिंगनमें बाँध लिया।

छूटते ही कट्टोने कहा—

"मेरी अच्छी जीजी, कैसी भली हो ! जीजी, चलो, मेरे घर नहीं चलोगी ?"

गरिमा बहुत बार नहीं रोई है। पर यह रोना तो बड़ा सुखप्रद मालूम हुआ। वह इससे हरी हो गई, जैसे बारिशसे झरी-धुली नई फुलवारी हो।

"कट्टो, तू मेरे पास नहीं रह सकेगी ? मेरे साथ घर चली चलो तो बड़ा

ही अच्छा हो। ऐसी ही कट्टो बनकर रहना, सब तुझे प्यार करेंगे। तुझे कोई प्यार न करेगा तो किसे करेगा?"

"मैं साथ चलूँगी? कैसी अनिष्ट बात कहती हो जीजी? इस गाँवको छोड़कर और कहीं रहूँगी तो डालसे टूटे फूलकी तरह ज्यादे न रहूँगी। और वहाँ तुम्हारे घरमें मेरे जैसी गँवारिन क्या भली लगेगी? जीजी, मेरी तो यही जगह है,—यही अम्माका जामन-वाला घर।···पर यह ऐसी बात क्या कह दी? क्या उन्होंने कहा था?"

कट्टो, इस स्थलपर क्यों छूती हो? वह अभी अभी फूटकर बह चुका है, अभी तो दर्द देता है। पर मातृत्वकी इस हिलोरमें गरिमा इस हल्केसे दर्दको बेपीर झेल गई। बोली—

"उन्होंने तो नहीं कहा। वह क्यों कहते? पर कहो, तो कह देखूँ?"

"नहीं नहीं नहीं···"

"अब तो जरूर कहूँगी, डरती क्यों हो?"

"उन्होंने 'हाँ' कर भी दी, तब भी मैं नहीं जाऊँगी।"

"तब तो तू आप जायगी।" एकदम 'तू' से उसने ऐसी गहरी बात कह डाली।

कुछ देर और बात हुई। पर ऐसी सब बातें हम नहीं बता सकते। ऐसी जगह ज्यादे खोद-बीनकी जिज्ञासा भले आदमी नहीं किया करते। इससे मन मनमें जो चाहे समझ लीजिए, पर जोरसे कहिए मत और पूछिए मत।

उसके बाद कट्टोने अपनी जीजीसे अनुरोध किया—

"घर चलो। रोटी मैं बनाऊँगी तुम देखती रहना, बताती रहना।"

सो तो नहीं होगा। गरिमा क्या चुप बैठी रहेगी? वह भी जरूर बनायगी। बनायगी नहीं तो मदद तो खूब ही ज़ोर-शोरसे देगी। लेकिन—

"लेकिन, मैं अभी आती हूँ—मेरी क़सम। तू चल इतने...। मैं... मैं जरा..."

बस बस बस, कट्टोसे ज्यादे मत कहो। वह समझ गई है। वह चली जाती है, अभी भागी जा रही है। खूब बातें करो, तुम दोनोंके बीचमें अब वह कौन है, अब उसे एकदम अकेले भाग जानेकी बड़ी झटपट पड़ गई।—पर बातोंमें जीजी आना भूल न जायँ। बातों ही ठहरें,—क्या अचरज है! इससे चलते

चलते याद दिला गई—

"देखो, आना। कहीं...! तुम्हें मेरी..."

"हाँ, जरूर, जरूर, जरूर।"

कहती रहो कितनी ही 'जरूर', कट्टो तो यह गई, वह गई! छोड़ गई हैं तुम्हें कि अब खुलकर बातें कर लो--लेकिन झटपट उसके यहाँ भी जाना है।

नई बहूने (अब तक भी टोहमें लगी हुई, सबसे नये झिनटकी और ज्यादेसे ज्यादे मिर्चवाली कोई खरी--खोटी सुनने और सुनानेके लिए सदा बात देखनेवाली प्रौढ़ाओंकी रायमें बड़ी बेहयाईके साथ) अपने नये वरको खोज निकाला---

"जी, यह कट्टो मेरे साथ चली जाय तो कैसा?"

क्या?—कट्टो? फिर कट्टो?—मानों कुछ गलत सुना गया है, इसलिए प्रश्न-सूचक दृष्टिसे देखा। "......?"

"क्यों, सुना नहीं? या कट्टोको जानते नहीं?"

"क्या? कट्टो—? तब?"

"वह मेरे साथ दिल्ली जाय तो कैसा?"

"नहीं।" झटकेसे पूरा ज़ोर निर्णयमें फेंककर कहा।

"नहीं?"

"हाँ, नहीं। जहर रखना चाहो पास, रक्खो। पर मैं नहीं कहूँगा, मैं नहीं रक्खूँगा। कभी मरनेका लालच आ जाय तो खानेको पास ही तैयार रहे!—नहीं। कट्टोको तुम्हारे साथ या अपने साथ कभी रखनेको नहीं कहूँगा। समझीं?"

समझी भी और नहीं भी समझी। लेकिन इस बारेमें और ज्यादे कुछ बढ़ना ठीक नहीं समझा।

फिर बादमें बहुत ही नियमित, दोनों ओरसे पाबन्द; और अत्यन्त उचित रूपमें थोड़ा-सा परस्पर प्रेम-परिवर्तन हुआ। (नहीं, आप नहीं सुन पायेंगे,—धीरज न खोयें और मुँह न बनायें) जब पाबन्दी, शिष्टता और औचित्यकी परिधि आ गई, तब विवाहके बादके प्रथम दिनका प्रेमालाप रोक रखना पड़ा और गरिमा कट्टोके घरके लिए चल दी।

३१

साग तो अब हुआ जाता है। रायता हो ही गया है सब कुछ हो गया है, बस अब पूरी उतारनी ......हैं ! यह चून तो अभी निकला ही नहीं है, परात तो यूँ ही पड़ी है ! ! उसनेगा, तब कहीं......, इतने कढ़ाई जल...यह सब सोचकर, साग-सनी कर्छीको झट-से छोड़, हड़बड़ाई उठ खड़ी हो गई। देखो न, यह जीजीके झंझटमें आटा रह ही गया—पर लो, अब सब हुआ जाता है। वह चलनेको हुई ही कि—

"क्यों क्यों ?—क्या हुआ ?"

कट्टोने हँसते-हँसते बताया—

"सब हुआ, आटा तो निकाला ही नहीं। ब्याहके सामान तो हो गये- दूल्हा कहाँ है !"

"लो मैं लाई।"

"नहीं नहीं..."

"कहाँ है ?"

"वह रहा मटकेमें।"

गरिमा परात लेकर आटा लेने गई। कट्टो अपने सागमें लग गई। साग चलाते चलाते—देखा कि यह क्या ?

"जीजी चून खिंडा दिया !"

"—उठाये देती हूँ।"

"हैं हैं, धरतीका चून !"

उठानेको हो ही रही थी कि वहीं छोड़ दिया। फिर कट्टोका ख़्याल गया—

"जीजी; इतना चून नहीं; थोड़ा।"

एक एक मुट्ठी डालती जाती और पूछती जाती 'इतना ?' आखिर घटते घटते ठीक परिमाणमें आया ही,-डरते डरते कितनी मुट्ठी कम की गई;पता नहीं।

जीजी जब चलनेको हुई कि पता चला उसकी आस्मानी रंगकी बेलदार साड़ीका सामनेका हिस्सा सफेद हो गया है, और कोहनी तक हाथ भी मानों भूरे पाउडरसे सफेद कर लिये गये हैं।

"जीजी, यह क्या कर रही हो ? आज सबको हँसानेकी ठानी है या यह हाथका और साड़ीका रंग नहीं भाता ?"

"बोल चोल, और क्या करूँ ?"

"करो यह कि बैठो, और मुझे हुक्म दो। सबके अलग अलग काम होते हैं। कोई किसीका करे तो बड़ी गड़बड़ हो जाय। तुम्हें तो तुम्हारा काम ही सोभता है। चून-दालका और बासन-भाँडोंका काम तो तुम्हारा है नहीं जीजी। मेरा है, मुझे करने दो। और तुम्हारा जो देखनेका, बतानेका, करानेका है, सो तुम करो।"

"नहीं-री,...मैं अच्छी लोई बनाती हूँ, पूरीकी।..."

रोज रोज़की बात तो कहती नहीं। रोज तो उससे हो भी नहीं सकेगा। लेकिन आज तो बग़ैर काम किये वह नहीं मानेगी। जरूर कुछ पूरियाँ,—और अपनी साड़ी और अपने हाथ खराब करेगी,—चाहे पसीना आये, आँखोंमें पानी आये, घी उछलकर हाथ जला दे, और चाहे कट्टोको कितनी ही अड़चन पैदा हो! कट्टोका कहाँ भाग कि ऐसी अड़चन पैदा करनेवाली उसके यहाँ आई है! वह मदद करनेके नामपर सिर्फ काम बढ़ा रही है, और कट्टोको अपने खानेके सामान ही की नहीं, इस ग़रिमाकी और गरिमाके सामानकी भी फिक्र करनी पड़ रही है--पर चाहती है, रोज रोज ऐसा ही हो। कोई मिले तो उसे प्यार करनेवाला, वह उसे सिंहासनपर बैठाकर चौबीसों घण्टे उसकी चाकरी बजायेगी और इसमें वह कृतार्थ होगी। आज वह कितनी खुश है, इसको बहुत कम लोग समझ सकते हैं।

इसी तरह खाना आखिर बन गया है। कट्टोकी अम्माँ भी अब आ गई है। बहूकी लोरियाँ वह ले चुकी है। कैसी महारानी बहू है! बड़-भागिनी हो पूतोंसे सुखी रहे, राज करे, आदि अपनी मातृहृदयकी उछाह-रससे भरी असीसें वह उसपर बरसा चुकी है,--कुछ हर्षके आँसू भी।

वही माँ इस नौसिखुए हाथोंकी बेढब कार्रवाईको देखकर बड़ी खुशी हो रही है।

तब सत्यको बुलाकर जिमाया गया। गरिमाकी साड़ी कानके आगे तक खींच ली गई है। पर वह ज्यादा बोल नहीं रही है। सत्य भी ज़्यादा बोला नहीं। माँने जो बात छेड़ी तो सत्यने उखड़ी 'हाँ हूँ' से उसका स्वागत किया, इससे बात करनेका माँका उत्साह भी भंग हो गया है। कट्टो तो मानों अपनी कड़ाहीकी सम्हालमें एकदम व्यस्त है। उसे तो सत्यकी ओर आँख उठानेकी

सी छुट्टी नहीं मिल रही है। और यह कौन कह सकता है कि वह इस प्रकार-की छुट्टी नहीं चाहती। उसका मुँह मानों कामकी भीड़ने सी रक्खा है। उससे इसलिए, एक भी शब्द नहीं निकला है। हाँ, काम बेधड़क चल रहा है। न सिर उघड़े-बे-उघड़ेकी पर्वाह है, न यह कि हाथ यहाँ तक खुले हैं, और न इस बातकी ही कि थालीमें पूरी ठीक जगह पड़ती है या नहीं, क्योंकि अक्सर ठीक उसी समय कढ़ाईके घीमें कुछ खास काम निकल आता है, और आँखें उस घीकी ओर ही रखनी पड़ती हैं।

वृत्तांतके अध्यायका यह पृष्ठ, या कहें यह पैराग्राफ़, इन सब जमी हुई चुप्पियोंके कारण, इतना नीरस हो गया है कि हम उसे पाठकोंके सामने नहीं रखना चाहते। इसलिए—

* * *

"जीजी बैठो न।"

"तुम भी तो बैठो।"

"मैं पीछे खाऊँगी। निपटाना भी तो है।"

"निपटा लो तो फिर। मैं भी पीछे ही खाऊँगी।"

"नहीं जीजी, यह कोई बात है? तुम तो मिहमान हो, जीजी हो।"

"अच्छी जीजी हूँ, और अच्छी मेहमान हूँ,—इतना तो काम लिया कि-"

"नहीं नहीं, मैंने तो यह परोस भी दी थाली—"

"परोस दी तो रक्खी रहने दो। ठंडी काटेगी तो है नहीं।"

कट्टो हार गई। और यह हारना कैसा अच्छा लगता है! कट्टोने कहा—

"अच्छा तो लो, मैं भी अब निबटी। तुम्हें देर तक भूखी नहीं रक्खूँगी। पर तुमने फैलानेमें मदद दी तो अब निबटानेमें भी तो,..."

"बोलो, बोलो—"

तब मिलकर उठा-धराई की गई। कट्टोने आधा काम किया, आधा बताया कि ऐसे करो। इससे काममें कुछ शीघ्रता हुई हो सो बात नहीं. पर वह देर किसीको मालूम नहीं हुई.—और ऐसा लगा जैसे काम सचमुच जल्दी हो गया।

तब खाना हुआ दोनों सहेलियोंका। उनहार-मनुहार, छीन-झपट. गुदगुदा-हट और जबरदस्ती आदि आदि बहुतसे-व्यंजन भी थालीके व्यंजनोंमें मिल गये। और इनके कारण भोजन बहुत स्वादिष्ट हो गया। वे कट्टोने बनाये थे, इनके

बनानेमें ज्यादे श्रेय गरिमाका था। शहर दिल्लीमें वह नियमकी विधि-निषेधकी रेखाओंसे घिरकर कई कोणोंकी ऐसी ज्यामितिकी पिण्ड बन गई थी जो हिल-हिला नहीं सकती। यहाँ,—कट्टोके यहाँ आकर वह रेखाएँ हट गईं। तब जो कुछ दवा हुआ, घुटा हुआ और घिरा हुआ था, वह तनिक तीखे वेगसे उमड़ पड़ा। इसलिए इस एक थालीमें खाते वक्त उसने कट्टोके साथ ऐसा दंगा मचाया कि क्या कोई मचा सके।

सहेलियोंका यह काम हम नहीं देखेंगे, क्योंकि क्या ठीक, इस ऊधम दंगेमें धोती कहाँ बहक जाय, पल्ला कहाँ हो जाय, और हाथ न जाने कहाँ कहाँ पड़ें। इसलिए अगर सभ्य हो तो आँख मींचकर लौट पड़ो। कहीं पता चल जाय और आयंदा वैसा ऊधम ही बन्द हो जाय,—तब तो दुनियाकी भारी क्षति होगी;—हम सच कहते हैं।

३२

लेकिन दिन एक-से नहीं रहते। काल चला जाता है और चीज़ोंको नई-पुरानी कर जाता है। नईका काम है पुरानी हो जायँ, पुरानीका काम है मर जायँ। यह मरी, फिर शायद किसी विशेष पद्धतिसे नई हो जाती है। वह विशेष विधि क्या है,सो हम क्या जानें? जिसे विद्वानोंने खोजा,मर गये पर नहीं पा गये; खोज रहे हैं, मर रहे हैं, पर नहीं पा रहे हैं;—उसीको हम क्या जानें? हमसे बहुत ज्यादे मेहनत नहीं होती, इस खोजने खोजनेमें ही और पानेके लालचमें खोने खोनेमें ही हमसे जिन्दगी नहीं बितायी जायगी। हमने तो एक शब्दमें कह दिया 'परमात्मा', और मानों हमने पा लिया। हमारी छोटी सी गर्ज़; तो पूरी हो गई। पर लोग हैं, खोजनेसे थकना ही नहीं चाहते। कहते हैं, हम पाकर ही छोड़ेंगे। हम उनको धन्यवाद देते हैं, हाथ जोड़ते हैं, बड़ी श्रद्धासे 'नास्तक' कहते हैं, पर कहते हैं, 'भाई, खूब खोजो, जितना बने उतना। पर बिदासे एक दिन पहले समाधान नहीं मिल पाये तो हमारे साथ हो जाना और कहना 'परमात्मा'। मिल गया तो हम इसका जिम्मा लेते हैं कि जितने कोष मिलेंगे हम जबरदस्ती उनमेंसे 'परमात्मा' मिटा डालेंगे।

पर हम बहक गये। कट्टो और गरिमा और हमारे वृतांतका परमात्मासे

कोई विशेष निजी सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ नये-पुरानेकी बात थी। सो बात यह है कि गाँवका स्वाद पुराना हो गया है; कट्टोसे मन अब वैसा नहीं खिंचता, पहले-जैसा नहीं मिलता और नहीं बहलता। अब अखबारोंकी जरूरत अनुभव हो रही है,—किताबें भी तो नहीं हैं! उनसे अच्छी बोलती है, बहुत तनरूर भी नहीं रहती, पर ये गाँवकी औरतें,—उँह उनसे दिल नहीं मिलाया जा सकता; ठीक बोलतीं नहीं, ठीक बैठतीं नहीं, ठीक बात भी नहीं समझतीं। —बोलो, बात भी तो नहीं समझतीं! फिर कैसे दो मिनट उनसे चर्चाको जी चाहे? वहाँ दिल्लीमें लता थी, जाह्नवी थी, कभी घर आ जाती थीं, होता तो वहीं चली जाती थी,—उनसे बात तो होती थी दुनियाकी और कुछ अक्लकी, यहाँ तो वह बात नहीं। दुनियाकी कुछ खबर नहीं रहती,—एक ही धंधा रोटी-चूल्हा और पति। और आपसकी 'तू और मैं'। वहाँ बाग थे, बगीचे थे, जी चाहा जब साफ़ हवा ले ली,—यहाँ हवा भी गन्दगीमेंसे छनकर आती है, गाँवके चारों तरफ़ जहाँ-देखो घूरा, उसकी हवा,—क्या, वह, कार्बन, कार्बन आक्...खैर, कुछ तन्दुरुस्तीको खराब कर देगी। मैं, देखो, कैसी सूखी-सी...।

सारांश यह कि जब नई बात पुरानी बूढ़ी हो गई तो ये दोष सब उसके ऊपर सिकुड़नकी तरह, गिन-लो ऐसे, फैल गये।

तब एक दिन एक चिट्ठी भी बाबूजीकी आ गई।

—"सत्य, गाँवमें तो काफी दिन हो गये। अब चाहो तो यहाँ आ जाओ। गिरीका मन पूरी तरह न लगा हो, तो तुम जानते ही हो, अचरजकी बात नहीं। वह ऐसी जगह रही नहीं। मुझे कुछ और नहीं, यही खयाल है कि कहीं स्वास्थ्यपर असर न पड़ जाय। स्वास्थ्य पहले, सब कुछ बादमें। लिखो, कब आ रहे हो, ताकि गाड़ी भेज दी जाय। जल्दी ही आ जाओ। गरिमा अच्छी होगी। प्यार कह दो, कहो, मुझे चिट्ठी लिखना एकदम भूल न जाय। और सब अच्छे हैं।

तुम्हारा—
भगवद्दयाल

पुनः
चाहो तो आनेका तार दे देना—।

"भ० द०"

तब तक सत्य घर जानेके काफ़ी पक्षमें हो गया था। गरिमाके स्वास्थ्यकी ओरसे निश्चिन्त वह नहीं रहना चाहता। गरिमाने बताया है, गर्मी है, हवाकी तबदीली चाहिए, यहाँका पानी ठीक नहीं, जी मिचलाया-सा अनमना-सा रहता है। Aloofness की (एकाकी) जिंदगी बितानी पड़ती है, सोसायटीका अभाव है, दिमागको खुराक और ताजगी नहीं मिलती,—शायद इसीसे ऐसा है। गरिमाने यह भी कहा था, "पर मुझे कुछ नहीं। तुम जहाँ अच्छे, मैं भी वहाँ ही अच्छी। तुम्हें गाँव माफ़िक़ है तो ठीक है,मेरा क्या?

यह अन्तका उलटा लगनेवाला तर्क ज़्यादेतर तुरन्त सिद्धि दिलवा देता है। यह बहुत कम चूकता है, और मर्मपर इस प्रकार बैठता है कि सौमें निन्यानवे हिस्से सिद्धि हुई ही रक्खी समझो। अश्रु-सिंचन-तर्ककी यह सूक्ष्म और हल्की पर्याय है, पर गला देने, पिघला देने और कहींका न छोड़नेमें उससे कहीं कारगर। सोचते तो थे ही जानेकी, इस चिट्ठीने मानों दर्वाजा खोल दिया, कहा, "आओ आ जाओ।"

फिर चलनेके साज-सामान होने लगे, पुलिन्दों और ट्रंकोंकी सँभाल और बाँध। नयी बहू जा रही है, यह खबर कुसलोने इससे, और उसने दूसरे उससे और फिर तीसरे और चौथे...इस प्रकार 'इस उस' के पंखोंपर चढ़कर गाँव-भरका चक्कर लगा आई। इसी चक्करमें मिली वह कट्टोको।

"जीजी जा रही हैं! वह भी जा रहे हैं!"

वह कई दिनोंसे नहीं गई तो क्या, और जीजी नहीं बोलती तो क्या, अब जाये बग़ैर उससे नहीं रहा जायगा।

पहुँची।—बहुत-सा सामान उठाना-धरना है। कपड़े-लत्ते कुछ मैले हैं, सो अलग पोटलीमें बँधेंगे। और ये धोबीके यहाँसे नये मँगाये हैं,—सबके सब ट्रंकोंमें चिने जायँगे। यह भी ख़्याल रक्खा जायगा कि कौन किसमें।—यह सब काम देखकर कट्टो चुप इन्तज़ार करने लगी है, जीजी वक्त पायें, देखें, तब बोलें। जो वह मैली धोती वहाँ लटक रही है, उसे देखनेमें अचानक ही यह कट्टो खीज गई है। पर अभी तो और भी बहुत-से कपड़े हैं। निगाह उठानेकी कब फुर्सत मिलेगी,—कुछ ठिकाना तो नहीं।

गरिमाके मनकी पूछते हो? वह अपनेको मन ही मन दोषी समझ रही है। देखकर भी नहीं देख रही है,—सो भी अनुभव कर रही है कि दोष हो रहा

है। पर दोषको मिटानेकी चेष्टा उसके जैसे स्वभाववालीको कठिन हो रही है। इसलिए, वह अपने मनको भुलानेके लिए, कि जैसे मन मान ले सचमुच कट्टो दीखी ही नहीं, धोबीके कपड़ोंके ढेरमेंसे वह अत्यधिक व्यस्तता प्राप्त कर लेना चाहती है।

आखिर, कट्टोने कहा, "जीजी!..."

अब तो यह व्यर्थ भुलानेकी कोशिश, यह अभिनय, समाप्त करनाही पड़ेगा:

"कट्टो!.."

"जीजी,जा रही हो?"

"हाँ।"

"आओगी?—कब आओगी?"

"सो तो वह जानें।"

"नहीं आओगी?"

"क्या कह सकती हूँ, कट्टो?"

"जीजी, आना चाहो,आ सकोगी। क्या और कुछ रोज नहीं रह सकती।"

"कट्टो, मन नहीं लगता। कोई बोलनेवाला नहीं मिलता। ऐसी जगह मैं रही भी नहीं कभी।"

"पाँच-छः रोजसे मैं आई नहीं। क्या मालूम था, मेरी जीजीका मन नहीं लग रहा है। जीजी, न होता तुम्हीं बुला लेतीं। बुलानेपर सिरके बल आती। जीजी, कट्टोसे रूठोगी तो कट्टो क्या करेगी?"

जीजी कुछ बोल नहीं सकी। कुछ 'नहीं-हाँ' कर दिया। कट्टोको छोटा बनना आता है, और जिसे छोटा बनना आता है, उसे प्यार पाना आता है। जब इस तरह पीछे पड़ जाती है तो कट्टोको प्यार न देना कठिन हो जाता है। सो ही गरिमाकी अवस्था है।

"जीजी, नाराज हुई हो तो बता दो। कुसूर हुआ हो तो बता दो, अब नहीं होगा। और देखो", उसने आँख मिलाकर, और फिर पैर छूकर, हाथ जोड़ते हुए कहा, "देखो, जो हुआ सो माफ़ कर दो।...कर दिया न? देखो जीजी, कट्टोकी बुरी बात मनमें ले जाओगी तो ठीक नहीं। तुम्हारे मनको भी चैन नहीं मिलेगा, मैं तो यहाँ मरती रहूँगी ही।"

गरिमाने दोनों हाथ उसके कंधेपर रक्खे।

"कपड़े जी..." कहते हुए सत्य भीतर आये। देखकर ठिठक गये। वह अब कट्टोके सामने पड़ते घबड़ाते हैं। पदध्वनिपर मुड़कर कट्टोने देखा, सत्य हैं। उसने पैर छूकर, पूछा—

"तुम जा रहे हो?—जीजी फिर कब आयेंगीं?"

"कह नहीं सकता।"

"बिल्कुल नहीं कह सकते?"

"कैसे कह सकता हूँ?"

"तो फिर कब मिलना हो?—कट्टोका कहा-सुना माफ़ कर देना। और कुछ हो तो लिखना। कट्टोको पढ़ाया, अब उससे कुछ सेवा नहीं लेना चाहते?"

मास्टर चुप।

"तो मैं जाती हूँ। जीजी, इनको कुछ हो जाय तो मुझे जरूर खबर लिखना। और तुमसे जब बने यहाँ आना। घर तो तुम्हारा यही है अब। और तुम दोनों माफ़ कर देना। कट्टो बड़ी भूलें करती है, बड़ी मूरख लड़की है। और तुम दोनों सुखी रहना। और कट्टोकी भी कभी याद कर लेना, क्योंकि कट्टो तुम्हारी बहुत बहुत याद करेगी।"

कट्टो फिर एक बार दोनोंको नमस्कार करके और जीजीसे गले मिलकर चली गई।

सत्य अब जल्दी जल्दी किसी काममें नहीं लग जायेंगे तो रो पड़ेंगे, इससे झट झट कपड़े फैलाने और इकट्ठे करने लगे। कहा—

"जल्दी करो, जल्दी।"

गरिमाको आँसू छिपानेकी बहुत ज़्यादे जरूरत नहीं है, इसलिए वह स्वतन्त्रतासे कपड़े भिगो रही है।

३३

गरिमा-सत्यका, और कट्टो-बिहारीका विवाह हो गया है। और बहुत कुछ काम हमारा खतम हो गया है। इक्कीसवीं सदीके अनुसार हम सन्तानके शौकीन नहीं हैं,—इसलिए उस बात तक कहनेके लिए ठहरेंगे नहीं।

सत्यने दिल्ली जाकर देखा, यह मकान ज़्यादा खुला और अच्छा है। पत्थरका फ़र्श है, नल-बिजलीका आराम है। और भी सब सुविधाएँ ही सुविधाएँ हैं। इसलिए बाबूजी कहते हैं तो वह दिल्ली ही रहेगा।

रहना अब दिल्लीमें ही होने लगा। बिहारीपर भरोसा नहीं है। बिहारी कच्चा आदमी नहीं है कि किसीकी खातिर टूट जाय,—बाबूजी यह बहुत अच्छी तरह जानते हैं। इसी लिए सत्यको अपने पास बसाया है।

तो अब माँको भी गाँवसे बुला लिया जाय। माँ आईं तो, पर बाप-दादों-का मकान छोड़नेका सदमा साथ लेकर आईं, और थोड़े दिनों बाद यह घर भी और यह लोक भी छोड़ गईं। दो हफ्तेके अनन्तर गरिमाकी माँका भी देह छूट गया।

तब घरके भीतरका बोझ गरिमाके सिरपर आया। उसने काफ़ी अच्छी तरह निबाहा। पर निबाहनेमें नौकर अब काफ़ी लगते हैं। गरिमाने नौकरोंसे निबटनेका भी एक काफ़ी जटिल काम बढ़ा लिया है।

बाबूजी अब इधर ढीले हो चले हैं। बाहरकी दौड़-धूप सत्यके सिर आ पड़ी है। इस तरह सत्यके निर्बाध आदर्श-चिन्तनमें बाधा पड़ती है। वह, जो होता है, करता तो है, पर झींकते हुए, झिझकते हुए और शर्माते हुए।

अब बाबूजीने उसे समझाना शुरू किया है और गरिमाने टेढ़े ढङ्गसे छेना। आदर्शकी आराधनाका काम उसकी निगाहमें कितना ही बड़ा काम हो, दूसरोंको विश्वास कराना कठिन है। लोगोंकी निगाहमें वह सब-कुछ निठल्लेप-नका बहाना है, अकर्मण्यताकी सफ़ाईका नाम है। निठल्लेपनसे दुनिया नाखुश रहती है, और फिर आदमी खुद भी अपनेसे नाखुश रहने लगता है।

गरिमा जब तब ऐसी चोटें करती है कि भीतर ही भीतर झुलस रहते हैं, पर कहते कुछ नहीं बन सकता। घरका जो अधिकार है, कहा जा सकता है वह गरिमाके अनुग्रहका फल है। और गरिमा इस सत्यका प्रयोग खूब होशि-यारीसे और खूब निशानेसे करना जानती है।

इधर बाबूजीने अदालतका थोड़ा-बहुत काम पहले ही लेना शुरू कर रक्खा था। अब ज़्यादे ज़्यादे लेने लगे। उधर ऊँच-नीच भी समझाते जाते थे। परिणाम यह हुआ कि एक रोज़ सत्यका नाम भी बाक़ायदा वकीलोंमें दर्ज हो गया।

धीरे धीरे ठाठ भी बढ़े, नखरे भी बढ़े और अधिकार-प्रयोग भी। जितनी

वकालत कम चलती थी, उतने ही ठाठकी ज्यादा जरूरत थी, शायद व्यवसायकी नीतिके तौरपर। और जितनी ही वकालत कम चलती थी, उतना ही नखरे और अधिकार-प्रयोग तीखे होते जाते थे। मानों जो अदालतके खाली घंटोंमें, सूट-बूट सज्जित अवस्थामें, आत्मदर्पके विचार बन्द हृदयमें उठते रहते हैं वे घरमें ढक्कन खुलते ही बदलेके साथ निकलते हैं।

बिहारी इम्तहान देकर चला ही गया है। वह पास भी हो गया और पास हुएको भी दस महीने होने आ गये। पत्र तो उसके आते हैं, पर पूरा पता नहीं लिखा होता। बाबूजी जानते हैं कि फ़िक्र और ढूँढ़से कुछ परिणाम न होगा, इससे चुप हैं।

बाबूजी अब गरिमासे कभी कभी तंग दीख आते हैं। गरिमाका भी ख्याल है कि बाबूजी बुढ़ाकर चिड़-चिड़े बन गये हैं। इसलिए अब वह उनकी बातको उतनी पर्वाहसे नहीं सुन सकती।

अब घर उसके हाथमें है। उस घरकी एक बात है?—दस बातें हैं। बाबूजीको वे सब कैसे समझाई जा सकती हैं? बाबूजी यह सब तो देखते नहीं, यों ही गरिमा बेचारीसे उलझ पड़ते हैं। उसे भी लाचार कुछ सी थी-सी कह देनी पड़ती हैं।

ऐसी अवस्थामें वह बिहारी कहाँ चला गया है? फिर फिर कर विचार आपको वही याद आता है। अब जरा अस्वस्थ रहते हैं। खाँसी उठती है, बदन दर्द करता रहता है। सत्य नियमसे बँधे दो वक्त आता है। अब कामकाजी आदमी है, वकील है, बहुत तो फ़ुर्सत पाता नहीं। दस धंधे हैं, सौ झंझटें हैं। बाबूजी तो बीमार हैं,-जमीन-जायदाद, लेन-देनका भी सब काम उसीको भुगताना पड़ता है। लेकिन बाबूजी चाहते हैं कि दस बार आये, सो कैसे आये? अब फ़ुर्सत निकालकर दोसे ज़्यादे बार आता है तो इशारे इशारेमें यह सब बात बाबूजीको समझाता है। बाबूजी आँख मीच लेते हैं,-मानों समझ गये हों, पर समझते नहीं, फिर वही उम्मीद करने लगते हैं।

हाय!—बिहारी कहाँ है? बेचारा बाप उसीकी याद करता है। उसका यह सफ़ेद पका सिर बहुत कुछ जानता है, पर लाचार है। जानता है, बिहारी था जो सेकिंड-भर न छोड़ता उसे,—चाहे वकालत जाती चूल्हेमें। और वकालत नहीं जाती चूल्हेमें, जैसी कि अब सत्य उसे भेज रहा है। लेकिन बूढ़ा लाचार है। बिहारी?—

तभी दुर्घटना हो गई। मोटर टकरा गई, वृद्धके चोट आई, सत्य बच गया। सत्य श्वसुरको अस्पताल पहुँचाते ही जरा घर आ गया है। पीछे ही उसके बिहारी अस्पताल पहुँच गया।

वृद्धने पहचान लिया, "आ गया बेटा ?"

"आ गया बाबूजी।—बस अब अच्छे हुए, घर चलेंगे।"

"बिहारी, नहीं, दर्द बहुत है। दिन हो गये पूरे।"

"नहीं नहीं बाबूजी, अभी मैं कट्टोको दिखाऊँगा। और वह आपकी सेवा करेगी और आप अच्छे हो जायेंगे। कट्टो और कुछ जानती नहीं, सिवा सेवा करनेके। आपको वह चंगा करके छोड़ेगी।"

"कहाँ है,—कहाँ है वह बेटा ?"

"अब शाम तक पहुँची। तार दे दिया है।"

"मैं उसे नहीं जानता, तुझे जानता हूँ। तेरी पसन्द कभी गलत नहीं हो सकती।"

"बाबूजी, वह देवी है।"

"बिहारी, दर्द बहुत है। बोलो मत बेटा, बोलनेसे.. बात आगे पूरी नहीं हो पाई।

कट्टो आई। कट्टोने सेवा की, आशीर्वाद पाया, सफ़ेद पलकोंके नीचे रोती हुई आँखोंके कुछ बहुत मीठे आँसू पाये। और पिता मर गये।

मोटर कमबख़्त रास्तेमें खराब हो गई थी, भीड़में धीरेसे चली, यह और वह!—"हाय!" सत्यने कहा, "मैं आखिरी वक्त पिताके पास भी न रह सका!"

३४

अगले रोज यह चिट्ठी सत्यको मि०......एडवोकेटका चपरासी दे गया—

"बेटा सत्य, मेरे दो बेटे थे, बिहारी और सत्य। तुम्हें मैंने गरिमा दी, जिसपर मैंने सबसे ज्यादे प्यार वारा और जिसको मैंने सबसे क़ीमती चीज

समझा। अब बाकी चीज़ बिहारीको दे जाता हूँ। मि०......एडवोकेटके यहाँ......बैंकके 'करण्ट एकाउण्ट' के अतिरिक्त मेरी सम्पत्तिका सब ब्यौरा है। वह ठीक कर लेंगे। बिहारीको शायद इसकी जरूरत पड़े। तुम तो लायक हो, कमा लोगे और दुनियामें अपनी जगह बना लोगे। पर बिहारीको तो उबारनेके लिए शायद ये भी काफ़ी न हों।

तुम्हारा—भगवद्दयाल।"

पढ़कर सत्यको गुस्सा हुआ,—बदल गये। वह अब इस मकानमें भी नहीं रह सकते। बिहारीके दानपर वह नहीं रहेंगे,—एक मिनट भी नहीं रहेंगे। ये सब विचार और उनका कारण समझाकर उन्होंने गरिमाको कह दिया। गरिमा मकान छोड़नेको राज़ी नहीं हुई। मत हो, पर सत्यका आत्म-सम्मान इतना सस्ता नहीं है। तत्क्षण कुछ अपना सामान लेकर और नक़द सौ रुपये लेकर वह चला गया। एक छोटा-सा घर किराये लिया, और वहीं रहने लगा। मि०......एडवोकेटको लिख दिया—

"मि०....,एडवोकेट,

"मैंने मृत मि० भगवद्दयालकी जायदाद परसे क़ब्जा छोड़ दिया है। आप अब चाहें मुझे आफिस बुलाकर सब समझ सकते हैं। उनकी लड़की,—मेरी स्त्री अभी उसी मकानमें है। उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ।

आपका

......"

बिहारीको पता चला। बिहारीसे कट्टोको।

पता आखिर मकानका लगाया ही। एक खाटपर बैठा सत्य सोचमें है। जीवनपर दृष्टि डाल रहा है और उसे समझनेकी चेष्टा कर रहा है। उस सारे जीवनमें कोई रीढ़ नहीं दिखाई देती।

आहट हुई, आँखें उठीं, देखा, कट्टो है। जहाँ गरिमा नहीं आई,—इंकार कर दिया, जहाँ अभी कोई भी आस बँधानेवाला नहीं, वहाँ कट्टो!—कट्टो, जिसको लांछित और अपमानित किया है! वही कट्टो!—क्या उपहास करने आई है?

"तुम घर क्यों छोड़ आये?"

"वह मेरा घर नहीं था।"

"यह कैसी बात कहते हो?"

"वह बिहारीका है।"

"वह क्या पराये हैं ?"

"हाँ, पराये हैं।"

"हैं हैं, यह न कहो।"

"वह घर-भर मेरा पराया है।"

"हैं, यह क्या कहते हो ? खबरदार, जो ऐसा कहा ! मेरी जीजीको तुम—"

"देखीं तुम्हारी जीजी....।"

तब उसने गिरकर पैर पकड़ लिए—

"मेरी जीजीको तुम कुछ नहीं कह पाओगे। क्या मैं तुम्हारी नहीं हूँ ?"

"नहीं, कोई नहीं हो। मैंने अपने हाथसे तोड़कर तुम्हें दूर फेंक दिया, और उस...."

"बस बस, मेरी खातिर बस। मैं तुमसे कहती हूँ, उन्होंने तुमसे न आकर गलती नहीं की। तुम्हीं क्यों चले आये ?"

"क्या मैं बेहया बनकर रहता ?"

"मेरी प्रार्थना मानों, चलो। हाथ जोड़ती हूँ।"

"यह नहीं कर सकूँगा, कट्टो। माफ़ करना।"

"नहीं ?"

"नहीं।"

"नहीं कर सकोगे ?"

"और सब कर सकूँगा। यह नहीं।"

"और सब ?"

"और सब,—हाँ। यह नहीं।"

"अपनी बातको याद रखना।" कहकर उसने चरण छुए और वह चली गई।

अगले रोज आई, चालीस हजारके नकद नोट सामने किये।

"न न न।"

"बोलो नहीं, कह चुके हो।"

"कट्टो !..."

"देखो, तुम जबान हार चुके हो।"

"कट्टो, मुझे नरकमें मत घसीटो।"

"हैं, [illegible] !"

उन्हें रुपयेकी जरूरत थी। वह उनकी आदतमें पड़ गये थे। यही कमी थी जिसने 'न न न' को कम करते करते आखिर अनमने मनसे लेनेको बाध्य कर दिया। अब उनकी पैरोंमें पड़नेकी बारी आई। जो तना रहा, उसे रुपयोंने झुकाया। सत्य कट्टोके पैर छूनेको बढ़ा—

असह्य त्रासके भावसे झट पैर पीछे खींचकर वह बोली—हाथ जोड़ती हूँ, मुझे लज्जित न करो।

"कट्टो!"

"एक अच्छा-सा मकान लो। मेरी जीजी वहाँ रहेंगी, यहाँ कैसे रहतीं?"

सत्य कुछ देर बेसुध-सा सुनता रहा। फिर हठात् स्वस्थ बनकर बोला—

"तुम्हारे कहनेसे सब करूँगा, नहीं तो ..."

मुँहपर उँगली रखकर कट्टोने कहा—

"चुप!"

सत्य चुप।

"जीजीको मेरी कुछ मत कहना।—कहो।"

"कुछ नहीं कहूँगा।"

तब फिर कट्टो सत्यको पानी पानी हुआ छोड़कर चली गई।

३५

"अब?"

कट्टोने बिहारीसे पूछा—

"अब?"

"अब हमारा यज्ञ आरम्भ होता है।"

"मैं क्या करूँ?"

"गाँव जाओ। बच्चियोंको पढ़ाना, उसीसे गुजारा चलाना।"

"तुम?"

"मैं भी गाँव जाकर किसान बनता हूँ।"

"उस,—मेरे गाँवमें...?"

"नहीं। वही—दूर, फिर भी पास। अलग, तो भी एक। कहीं दूर गाँवमें जाऊँगा।"

स्वर हठात् बदल गया, मानों उसमें कुछ कमाल आ मिला। जिज्ञासा की—

"यह रुपया!"

"इसका उपयोग कुछ समझमें नहीं आता।"

"इतने पर्यटनसे इसका उपयोग नहीं समझ आया?"

"नहीं। भिखारियोंको बाँटूँ, वह बढ़ते हैं। किसानोंको दूँ, वह इसपर आसरा डालनेकी आदतमें पड़ जाते हैं। जिसे देता हूँ, वही उसके चस्केमें पड़ जाता है, और फिर परिश्रमसे कटता और जी चुराता है। उद्योग चलाऊँ तो और रोग पीछे पड़ जाते हैं,—मशीनका और केन्द्रित सम्पत्ति और केन्द्रित व्यवसायका। पैदा करो, और फिर खपाओ। जहाँ श्रम केन्द्रित हो गया, वहाँ श्रमका मूल्य और श्रमकी असलियत घट गई, और पैदायश बढ़ानेकी फिक्र हो गई। उसके लिए फिर बलात् खपत बढ़ानेकी तरकीबें सोचनी पड़ती हैं। यह अपनी अपनी खातिर पैदायश और खपत बढ़ानेकी प्रवृत्ति मेरे ख्यालमें बड़ी गड़बड़ है। मेरे ख्यालमें यह पैसा ही गड़बड़ है। पैसेने परिश्रमका सम्मान नष्ट कर दिया और उसे किरायेकी चीज बना दिया।..."

"फिर?"

"फिर क्या? जिसका दाँव लगे मेरी सम्पत्ति लूट ले जाय। मेरी है वह किस बातकी? मैंने वह कब कमाई है? मैं तो कहता हूँ वकील लुटेरे जो चाहें मेरा मकान ले लें, जो चाहें नकदी ले लें। मेरे पास जो भी पहले दस्तखत कराने आयगा, उसीको दस्तखत दे दूँगा। सोचूँगा बला टली। मेरी किसानीमें यह जायदाद और पैसे भी तो आफ़त ही डालेंगे। फिर क्या मुझे किसानी सूझेगी? या तो आसाइश सूझेगी, नहीं तो बहुत हुआ, लेक्चर देना सूझेगा। इस सबसे कुछ भला नहीं होता। इससे छोड़ो पैसेका ख्याल। तुम अपनी बच्ची पढ़ानेकी बात सोचो, और हम अपने हल और बैलोंकी। क्यों?"

"हाँ-आँ।"

"तो?"

"तो हम अलहदा होते हैं?"

"हाँ।"

"प्रणाम!"

बिहारीने दोनों जुड़े हाथ थामकर झुके मस्तकपर चुंबन लिया। कट्टोने प्रणत भावसे उसे स्वीकार किया। और दोनों फिर अलग अलग राह चल दिये।—न जाने कब मिलनेके लिए!

समाप्त

स्पर्द्धा

१

वॅंचिलोंके जीमें एक बात उठी है—शायद बहुत दिनोंसे उठ रही है। इस समय मित्रसे वह बात कहे बिना उससे रहा नहीं जा रहा है। इसीसे उसने पूछा—

"तुम क्या बनना चाहते हो, गिडिटो ?"

उत्तरमें गिडिटोने पूछा—

"और तुम ?"

उसके मनमें जो आकांक्षा संचित हो रही है, अब वह वाणीमें फूट ही जायगी। कहा—

"मैं ?—मैं नेपोलियन बनना चाहता हूँ।"

"नेपोलियन ! एकदम ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"नेपोलियनका जीवन मुझे बहुत प्यारा लगता है। कहाँ वह खाकमेंसे उठा, कहाँ आसमानके सिरपर चढ़ गया और कैसी सेंट हेलेनाकी सूनी-सी जगह मर गया ! वह एक शख्स था, जो अरमान लेकर नहीं मरा। जीकी सारी हसरत उसने निकाल ली। राजमुकुटोंको लातसे उछालनेके बाद चौथाई सदी तक दुनियाको थर्रा रखनेके बाद, क्या चिन्ता थी, वह कहाँ मरता है !—जेलमें मरता है या अकेला मरता है। मनुष्योंमें वह सम्राट् था। छोटा-सा आदमी था; पर कितना विराट् !"

"ठीक ! तो तुम नेपोलियन बनोगे ? क्या और कोई नहीं है, जो बिना अरमान मरा हो ?"

"तुम्हारा मतलब बुद्ध और ईसासे है ? मैं मानता हूँ, वे अरमानोंको साथ लेकर नहीं मरे; पर वे अरमान लेकर पैदा भी कहाँ हुए थे।"

"तो क्या यह कुछ श्रेयकी बात नहीं है ? आरंभसे ही अपनी हविसको नष्ट कर रखना, क्या हर एकका काम है ?"

"मुझे तो इसमें कुछ भी बहादुरी नहीं दीखती। क्या थोड़ी-बहुत हम सबको ही अपनी आकांक्षाओंपर मिट्टी नहीं डालनी पड़ती ?"

"तो तुम्हें निश्चय है, इसमें तारीफ़की बात नहीं है ?"

"तारीफ़की बात क्या है,—मुझे तो नहीं दीखती। तारीफ़की बात तो इसमें है कि अपनी आकांक्षाओंको मुक्त कर दिया जाय, उन्हें असंभव तक पहुँचने दिया जाय और फिर उसी असंभवको संभव कर दिखाया जाय। अपने सब अरमानोंको भाग्यके मुँहपर पूरा करके दिखाकर एक विराट् शक्तिके रूपको दुनियाकी चकाचौंधके सामने स्तूपाकार—पर्वताकार—खड़ा करके, फिर उसे ठोकर मारकर, व्यक्ति एक विजन कोठरीमें जीवनकी शेष घड़ियाँ निरपेक्ष, निष्कांक्षी, कृतकृत्य होकर चुपचाप बिता दे और फिर मिट जाय,—मेरे निकट यह तारीफ़की और यही आदर्शकी बात है।"

"लेकिन फिर भी दुनिया बुद्धकी और ईसाकी ज्यादा ऋणी है। नेपोलियन तो बीती वस्तु बन गया। वह आज हमारे लिए पढ़-पढ़कर स्तंभित होने-भरके लिए हैं; लेकिन ये महापुरुष तो दुनियामें जीवित और अमर शक्तियाँ हैं..."

"जीवित और अमर शक्तियाँ नहीं हैं, जीवित और अमर अशक्तियाँ हैं। व्यक्तिके जीवनमें क्या तुम रोज नहीं देखते कि ये नाम उसे सशक्त तो क्या उल्टे अशक्त बना डालते हैं। यदि कभी इनके व्यक्तित्व शक्ति बनते हैं तो इतिहास इस बातका साक्षी है कि इससे बढ़कर घातक, विध्वंसिनी और आत्म-संहारक शक्ति कोई नहीं होती।...लेकिन तुम कहते क्या हो ? नेपोलियनपर जितना साहित्य निकला है, उतना और किसी एक व्यक्ति पर न निकला है, न निकलेगा ! न तुम्हारे बुद्धपर, न ईसापर।"

"मानता हूँ। और शायद तुम्हें मना नहीं सकता। तो तुम नेपोलियन बनोगे?"

"जीमें तो है। प्रार्थना भी है। लेकिन बननेका मार्ग अभी नहीं सूझता।"

फ्रांसमें जैसी क्रांति मची, वैसी जब यहाँ भी मचे, वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हों; मुझे भी वैसे ही पक्के और साहसी आदमी मिलें,--तब तो ! पर, क्या यह सब कुछ मिलेगा ? मिले, तो मैं दिखा दूँ, कैसे नेपोलियन बना जाता है।"

"मुझे इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा; पर यार, एकदम सम्राट् बन गये तो, देखो, हमारी भी याद रखना। हमें भी कुछ बना-बुनू लेना।"—हँसकर गिडिटोने कहा।

हँसकर ही बँजिलोने जवाब दिया "—हाँ-हाँ, जरूर।"

गिडिटोने फिर जैसे पक्का वादा लेकर ही छोड़ा। मानों कल ही उसे नेपोलियनके बँजिलो-संस्करणसे अपना प्रार्थना-पत्र स्वीकार कराना होगा।

इसपर बँजिलोने सोचा—कैसा बेचारा, गऊ आदमी है। सदा चुप-चुप अच्छा-अच्छा रहता है। और चाहता है, इस चुप्पी और इस छोटी गठरी-सी भलमनसीके ही इनाममें जब सम्राट् बनूँ, तो इसे भी कुछ बना लूँ। बेचारा है। जानता है, भलाई भी कुछ चीज है; जब कि यह जानता ही नहीं कि शक्ति ही सब कुछ है।

इधर गिडिटोने सोचा—'दुर्भाग्य है कि परिस्थिति, आदमी, क्रांति, मार्ग, अवसर और कुछ भी इस दुनियामें बना-बनाया नहीं मिलता। सभी-कुछ बनाना होता है। कैसा दुर्भाग्य है जगत्का कि केवल प्रकृति-नियममें इस जरा-सी भूलके कारण दुनियाको बँजी नेपोलियन बनकर न दिखा सकेगा ! मैं सचमुच विश्वास करता हूँ—अगर सब कुछ तैयार करा-कराया मिलता तो बँजी अवश्य सम्राट् बन सकता था। इतनी क्षमता उसमें है,--पर अब···?

२

गिडिटो और बँजिलो दोनों कालेजमें पढ़ते हैं। दोनों कार्बोनारीके*सदस्य हैं। समितिमें दोनोंका क्या-क्या स्थान है—एक दूसरा नहीं जानता। गिडिटो

---

*—'कार्बोनार' इटैलियन शब्द है, जिसका अर्थ 'पत्थरका कोयला जलानेवाला' होता है। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक भागोंमें इस नामसे इटली और फ्रांसमें अनेक राजनीतिक गुप्त समितियाँ बनी थीं, जिनका प्रभाव उस समय बहुत बढ़ गया था।

समितिकी सबसे ऊँची तीन आदमियोंकी नायक-गोष्ठीका भी सदस्य है। समितिके और सदस्य इस गोष्ठीको नहीं जानते; बस उसके हुक्मनामोंसे उन्हें काम पड़ता है, व्यक्तियोंसे नहीं। इधर बेंजिलो समितिके भीतर ही अपने लोगोंका चुपचुप एक अलग गुट बना बैठा है। अधिकारियोंको,—नायक गोष्ठीको—उसका पता नहीं है, पर यह गुट भीतर-ही-भीतर प्रबल होता जा रहा है।

दोनों गहरे मित्र हैं। पर गहराईमें बहुत नीचे उतरकर जैसे उन दोनोंमें विच्छेद हो गया है। वे अपनेको एक दूसरेमें खो नहीं सके हैं,—और दोनों ही यह बात जानते हैं। दोनोंके ही व्यक्तित्वमें, हृदयमें और मस्तिष्कमें एक एक कोना है, जो दूसरेके लिए अगम्य है। दोनों ही उस कोनेके द्वारपर टक्करें मारते हैं, पर प्रवेश नहीं कर पाते।

इन दोनों मित्रोंमें एक और सम्बन्ध है। उम्रमें दोनों लगभग बराबर हैं, पर गिडिटो जैसे बेंजिलोके लिए अपनेको जिम्मेदार समझता है। बेंजिलो समितिका आग-भरा सदस्य है। गिडिटो, जिसमें आग-वाग कुछ नहीं दीखती, इसका ध्यान रखता है कि कहीं उसका मित्र खुद ही अपनी आगमें न जल जाय! वह मानों मित्रका अभिभावक बन गया है। उसके खाने-पीने, पहिरने-ओढ़नेकी आवश्यकताओंको देखते और पूरी करते रहना उसने अपना दायित्व बना लिया है। बेंजिलोको खुद जैसे अपनी खबर रखनी ही नहीं चाहिए। बेंजिलो मित्रकी इन सेवाओंको सहज स्वीकार कर लेता है। उसे मानों अपने मित्रके अहसानोंका पता भी नहीं लगने पाता। वह मित्रके भोलेपनपर थोड़ी दया करता है। इधर गिडिटो अपने वयस्क मित्रकी लापरवाहियोंको देखकर खुश होता और थोड़ा चिन्तित भी होता है।

दोनों क्रांतिवादी हैं, पर बेंजिलो जैसे क्रांतिका तर्क है। तर्ककी ही तरह वह सीधा जाता है, और तर्कके समान टक्कर लेना और तोड़-फोड़ करना ही उसका काम है। और जैसे तर्क परिणामके भले-बुरेकी चिंता नहीं करता, जैसे तर्क केवल अपनी गति और दिशासे तात्लुक रखता है, वैसे ही बेंजिलो है।

लेकिन गिडिटो जैसे क्रांतिकी फ़िलासफी है। फ़िलासफ़ीकी तरह वह सोच विचार कर चारों तरफ़ देख-समझकर चलता है। फ़िलासफ़ीकी तरह वह पूर्ण है, उसीकी तरह गम्भीर। क्रांतिमें अशांति रह सकती है, उसके परिणाममें भी हिंसा रह सकती है,—पर उसकी फ़िलासफ़ीमें शांति ही शांति है। हिंसाके फ़िलासफ़ी डरती नहीं है, उसके निकट वह खुद शांतिका साधन बन आती है।

वैसे ही गिडिटो खूनसे भय नहीं खाता, पर लहूकी नदियाँ देखकर भी उसकी शांतिके स्वप्न भंग नहीं होते।

लेकिन फ़िलासफ़ी तर्कका पोषण करती है। तर्क जैसे उसका उच्छृंखल हठी बालक है।

बेंजिलो नेपोलियन बनना चाहता है। गिडिटो, गिडिटो ही बना रहना चाहता है। उसने अपना आदर्श किसी ऐतिहासिक पुरुषमें बंद नहीं किया है। वह अपना आदर्श अपने ही भीतर गढ़ता रहता है, और अपनेको उसके अनुरूप गढ़ता रहता है। वह गिडिटो ही बनकर अपने जीवनकी सार्थकता ढूँढ़ेगा। नेपोलियनके नामकी प्रभा उधार लेकर वह अपने व्यक्तित्वको सबल, सार्थक और सम्पूर्ण बना सकेगा, ऐसा उसका विश्वास नहीं है।

३

छोटा-सा कमरा है। बीचोंबीच अनगढ़ मेज़ है। दर्वाज़ेकी ओर मुँह किये हुए मेज़के किनारे एक ऊँची कुर्सी है। तीन तरफ़ तीन और साधारण कुर्सियाँ हैं।

एक तरफ़ इटलीका बड़ा नक़शा टँगा है। आलेमें कुछ बोतल और गिलास रक्खे हैं। एक कोनेमें एक खाली स्टूल है। और कुछ नहीं है। कमरा तीसरी मंज़िलपर है।

केवल तीन व्यक्ति बैठे हैं—गिडिटो, एंटिनो, लारेंज़ों।

ला०—गिडिटो अपना आसन स्वीकार करें।

एंटिनो चुप रहा। गिडिटो चुपचाप उस ऊँची कुर्सीपर आ बैठा।

सबने जेबसे अपनी-अपनी नोटबुक निकाली।

गि०—एलबर्ट पाँच दिन पहले हममें था; आज वह पीडमोंटकी गद्दीपर है। उसके सिरपर ताज रखते ही हमारे दो खास आदमी गिरफ्तार किए गए हैं। सोचना होगा कि हमें अब अपनी प्रगति क्या रखनी है।

एं०—वह भगोड़ा है। उसकी वही सज़ा होनी चाहिए।

ला०—सज़ा बोलनेसे कुछ नहीं होता। सज़ा पूरी नहीं की जा सकती।

एं०—क्यों?

ला०—वह हमसे आगाह है। फिर सारी फौज और पुलिस उनकी पुश्त-पर है।

एं०—फौज़ और पुलिस हमारे मार्गसे हमें हटा सकती है तो हमें मर जाना चाहिए।

ला०—मस्लहत भी कोई चीज है।

एं०—कमज़ोरी है।

गिडिटोने तब कहा—सम्भव है किसीकी समझमें अपने इटैलियन भाईको मारना ठीक हो; पर इस बारेमें जल्दी नहीं करनी होगी। हम पीडमोंटके संरक्षणमें इटलीका ऐक्य सम्पन्न करना चाहते थे। आज हम टुकड़ों-टुकड़ोंमें बँटे हुए हैं। उन टुकड़ोंकी शक्ति आपसमें ही क्षीण हो जाती है; इसीलिए आस्ट्रियनके लिए हमारी देशभूमि रौंदना सम्भव है। हमारी लड़ाई आस्ट्रियनके खिलाफ़ है और इस लिए पहला काम हमारा इटलीको एक राष्ट्र, एक आवाज़ और एक शक्ति बना देना है। यह काम पीडमोंटकी गद्दीको तहस-नहस कर डालनेसे नहीं होगा। उसको ज्यादासे-ज्यादा मजबूत, हाँ, उदार बनानेसे होगा। एलबर्ट, हो सकता है, हमारा शत्रु हो, पर उस-जितना भी उदार राजा मिलना असम्भव है। हम उसे मार नहीं सकते। उसकी सहायता हमें करनी होगी, और अपने लिए भी प्राप्त करनी होगी, क्योंकि हमें अपनी शत्रुता-मित्रता नहीं देखनी, देशका हित देखना है।

एं०—किसी राजाके नीचे इटलीका ऐक्य सम्पन्न करनेकी इच्छा दुःस्वप्न मात्र है। हम राज-सत्ता नहीं चाहते। हम उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते। हम प्रजा-सत्ता चाहते हैं। राज-सत्ताके इतने कड़वे अनुभवके बाद हम यह कभी संभव नहीं समझ सकते कि उससे प्रजा-सत्ता कायम करनेमें मदद मिलेगी,—वैसे ही जैसे आगसे सर्दी पानेकी उम्मीद नहीं कर सकते। हमारा कोड हमें एक और स्पष्ट आज्ञा देता है। वही आज्ञा पुरुषत्वकी, और मैं समझता हूँ—बुद्धि-मत्ताकी भी है।

गि०—मैं बहस नहीं करता। लारेंजो भाईकी राय मैं जानना चाहता हूँ।

ला०—मुझे डर है कि हत्या हितकारी नहीं होगी। इससे मेरी राय नहीं है।

गि०—भाई एंटिनो, अब मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि समिति हत्याके पक्षमें न रहेगी। बहुमत यही है।

एं०—बहुमतको सिर झुकाता हूं। पर एक सूचना अध्यक्षको देना चाहता हूँ—

एक पन्ना उलट कर एंटिनो पढ़ना शुरू करता है—

"सोमवार ता० १९ मार्चको सभा हुई। उपस्थिति १०। बेंजिलो, सभापति।

"भाषणके बाद, सर्व-सम्मतिसे, तै पाया कि अलवर्टको अपना सदस्य स्वीकार करना घोर अपराध था। अब वह पीडमोंटका राजा बन गया है। राजा खासकर वह, जो आस्ट्रियनकी अधीनता स्वीकार करता है, प्रजा-सत्ताका दुश्मन है; इसलिए वह हमारा भी दुश्मन है। हमारी अक्षम्य गलतीके प्रति-शोध और प्रजा-सत्ता एवं क्रांतिकी हित-रक्षाका एक उपाय है, वह है अलवर्टको नष्ट करना।

"सम्मति जब ली गई तो केवल से०—विरोधमें था।

"उसके लिए कई कानों दबी हुई, 'ट्रेटर' (विश्वासघातक) की आवाज आई।

"सबको शान्त करके बेंजिलोंने घोषणा की कि एलवर्टकी हत्या सभा-द्वारा निर्णीत और उचित ठहराई गई।"

एं०—इस सूचनाके साथ मैं अध्यक्षको अपने निर्णयपर फिरसे विचारनेका निवेदन करता हूँ।

गिं०—मेरा वही मत है जो मैं दे चुका। और समितिका भी वही मत है। बेंजिलोने अधिकारसे बाहरकी बात की है। किसी दुराग्रहको बढ़ने देना ठीक नहीं है। एंटिनो भाईसे मैं यह आशा करता हूँ कि वह बेंजिलोको नायकका मत, और निर्णय,—स्पष्ट शब्दोंमें सुना देंगे।

एंटिनो खड़ा हो गया। एक गिलास खींचा, कुछ शराब उसमें उँडेली, फिर अपनी कुर्सीके पास आकर, पतलूनकी जेबमें एक हाथ डालकर बोला—किन्तु मैं कहता हूँ, बँट जाकर हम गिरेंगे, एक रहनेमें हमारी विजय है। हममें फूट पड़े, इससे कहीं अच्छा यह है कि हम अपने सिद्धान्तोंमें तनिक अवकाश रखना सीखें, और अपने मतको बहुत तंग और बहुत अन्तिम न बना दें।

यह कहकर एंटिनोंने गिलास ओंठसे लगा लिया।

गिडिटो एकटक अपने सामने देखता रहा, बोला नहीं।

लारेंजोंने जवाब दिया—अनुशासन एक चीज है। उसमें ढील आई कि

संगठन भी ढीला हुआ। हमें ऐसा ऐक्य चाहिए जो हमारे कर्तृत्वको पुष्ट करे। कर्तृत्वको खोकर मेल बढ़ानेसे हम न बढ़ेंगे। हमें विभिन्नताका ऐक्य न चाहिए, हमें एकताका ऐक्य चाहिए। हमारा मत एक हो, काम एक हो, लगन एक हो। और इसका नाम है शक्ति। हमें वही चाहिए, और हम उसे कड़ाईसे अनुशासनमें बाँध रखेंगे, बिखरने न देंगे।...

इतना कहकर लारेंबोंने भी अपना गिलास सँभाला।

एंटिनोने कहा --हम खबरदार रहें कि हम अपने ऊपर बहुत ज्यादा जिम्मा न ले लें। मतैक्य असम्भव है। जिस राहसे यह सम्भव है, उसका नाम है बलात्कार, दमन, निरंकुश एक-तंत्रता। क्या हम छत्र-तंत्रताको धरतीपर ला देनेके व्रतसे व्रती होकर ही यहाँ नहीं जमा हुए? फिर क्यों हम ही अपने बीच निरंकुश एकतन्त्रता-सी खड़ी कर रहे हैं?

गिडिटोने स्थिर-भावसे कहा---क्या हम बहस ही करें? क्या हम निर्णय न करें? निर्णय तो करना ही होगा। दायित्वसे डरना कापुरुषता है। निर्णय एक ही तरहका होगा। केवल निर्णय-हीनता ही है, जिसमें किसीको असंतोष न हो; निर्णयमें विरोध अनिवार्य है। सबको सब कुछ मानने और सब कुछ करने देना हो तो भला है, हम निर्णय न करें। सबको सब कुछ मानने और सब कुछ करने देना था तो भला था, हम समिति न बनाते, आडंबर न करते, सीधी तरह घर बैठते। लेकिन नहीं; एक बार, एक जगह, एक शपथके नीचे हम इकट्ठे हुए, तो अपनी जो कुछ मानने और जो कुछ करनेकी स्वतंत्रताको होम कर इकट्ठे हुए। अपनेको मिटाकर आज यहाँ हम जमा हैं। इसलिए हमारी अपनी स्वतंत्रता कुछ नहीं है। आज देशकी स्वतंत्रतापर हमने अपनी स्वतंत्रताको वारा है, धन्य होकर वारा है। और इस तरह इस एक प्रकारकी परतंत्रताको अपने ऊपर स्वीकार कर एक बृहत् स्वतंत्रताको अपने लिए पहचाना और अपनाया है।...अब, हम क्या निर्णय करें? निर्णयका बोझ हम अपूर्ण प्राणियोंके ऊपर पड़ा है तो क्या हम उसे कन्धे परसे फेंककर चलते बनें? जानता हूँ, बोझ भारी है। पर, फेंककर भागना भी नहीं हो सकेगा। अपनी परिमित बुद्धिके अनुसार ही हम फैसला करेंगे, और अपनेको दी गई शक्तिके अनुसार उसे पूरा भी करेंगे। पर हम सतर्क रहें उसमें हमारा अपना कुछ न हो, अहंकारका गर्व न हो, प्रभाव न हो, मोह न हो। ठीकका ठेका कौन ले

सकता है; पर इतना कर चुकने पर, हमारा निर्णय ग़लत होगा, तो मानो हम उसकी ग़लतीसे अलिप्त रहेंगे। पर, चूँकि हमारे निर्णयके अंततः ग़लत होनेकी संभावना असंभव नहीं है, इसलिए हम निर्णय करनेकी ज़िम्मेदारीसे ही छुटें, यह नहीं हो सकता।...और जहाँ तक मेरी गति है वहाँ तक देखकर मैं कहता हूँ कि बेंज़िलोने जो किया है वह करके भूल ही की है; तब, यह देखने और माननेके बाद उस भूलको बढ़ा देना हमारे लिये किसी प्रकार भी क्षम्य और संभव न होगा।

ऐंटिनोने उत्तर न दिया, वह शराब ढालता रहा। लारेंजो भी इसीमें व्यस्त हो रहा।

गिडिटो खड़ा हो गया, नक़शेके सामने आ रहा, और उसे आँख गाड़कर देखता रहा, देखता रहा। मानों बेंजिलोके भाग्यको इस नक़शेमेंसे पढ़ लेना चाहता था।

४

संध्या हो गई है। कमरेमें गिडिटो अकेला है। वह प्रतीक्षामें है—कालेज चार घंटोंका खत्म हो चुका, बेंजिलो अब तक कहाँ रहा? लौटा नहीं! खाना ठंडा हो रहा है। कमरेके छज्जे पर आकर उसने सड़कके दोनों तरफ़ आँख फैलाकर देखा। बेंजिलोका कहीं पता नहीं!

वह आकर पलंग पर बैठ गया। किताब खोल ली। लेकिन पाँच ही मिनटमें किताब बन्द कर देनी पड़ी। किताबके अक्षर जैसे तैरने लगते थे; उसका मन जैसे भागा भागा फिरता था।

लैंडलेडीको बुलाया; कहा—खाना परोसनेकी अभी जरूरत नहीं; लेकिन तैयार रहना चाहिए। इतना कहकर जो हाथ पड़ा वही टोप ले, पिस्तौल जेबमें डाल बाहर आ निकला। और मैरिथके यहाँ पहुँचा।

मैरिथ वह है, जो यदि गिडिटो न होता तो बेंजिलोकी विवाहिता होती। बेंज़िलो रोज़ इसके यहाँ आता है, और चला जाता है। मैरिथ अपने धनी माँ-बापको छोड़कर यहाँ अपने बल और अपने काम पर अकेली रहती है—और अपने दिनकी राह देखती रहती है।

वह कुलीन है, और अपनी कुलीनतापर लज्जित है। सुन्दर है, और अपने सौंदर्यको रूखा रखती है। कुलीनताके सम्बन्धमें अपनेको बिलकुल उदा-

बीन नहीं बना सकी है और सौंदर्यके बारेमें सर्वथा अजानकार नहीं है। वह अपनेसे तंग है। वह पुरुष हो रहना चाहती है, क्योंकि वह स्त्री है। उसकी वृत्ति जोखम ढूँढ़ती है। समितिकी वह अत्यन्त तत्पर सदस्या है। उसे चैन नहीं है; इसलिए वह सदा उद्यत और गतिशील है। निम्नतामें आकर्षण खोजती है, क्योंकि निम्नतामें उसे प्रीति नहीं है; क्योंकि वह निम्न नहीं है। वह घरं ही पढ़ी है, और ललित कलामें उसने विशेष अभिरुचि पाई है। संगीत सीखा है, और चित्र बनाये हैं। ताज़े और हरे अपने स्वर-पर्णोंके दोने बनाकर उसमें अपने भीतरका सुख दर्द बूँद-बूँद कर, भरकर रख दे कि किसीके ओठ उसे चखें—वय पाकर भूली भटकी एकाकी घड़ियोंमें यह भी उसने किया है; पर यौवन जब प्रमत्त था और स्वीकृति चाहता था और भीतर लहूकी बूँद बूँद मानों अपना रंग देखनेके लिए मचल रही थी, तभी विधिने उसकी अजेयता पर एक ठेस पहुँचाई। तभी क्रान्तिका कठोर कर्म-सन्देश उसे सुन पड़ा। उसने अपनी तूलिका तोड़ दी, वायलिन फेंक दी, और देशकी स्वतंत्रताके अर्थ मरनेके लिए जीनेके इरादेसे अपने खाली मनको भर कर वह रहने लगी।

ऐसे ही समय बेंज़िलो पथ-प्रदर्शक बन कर उसके जीवनमें आ मिला। बेंज़िलोने उसके इरादेके सामने कर्मकी राह खोलकर मानों बिछा दी। यहाँ चलना ही चलना है; यहाँ करते रहना है और मरते रहना है। अपनेको याद करते हुए रहनेकी बात यहाँ नहीं है; अपनेको सर्वशः भूलकर यहाँ रहना होगा। जीवन इतना थोड़ा है कि मौतके कामोंको पूरा करते रहनेके उसके कर्तव्यमेंसे निकाल कर एक भी अवकाशका क्षण जीवनको अपने लिए नहीं दिया जा सकता!

और उसका परमात्मा जानता है, वह यही माँगती है। वह यही माँगती है। वह एक भी क्षण नहीं चाहती। चाहती है, एक क्षण भी उसे न मिले। एक भी क्षण उससे कैसे उठाया जायगा? क्योंकि उसका क्षण उसका युग है। और उसकी तूलिका टूट चुकी है, और वायलिन फिंक चुकी है—अब वह उस क्षणका क्या बनायगी?

वह अपना मन, प्राण और समय किसी पर डालकर ही तो जी सकती है, क्योंकि वह क्या रह गई है जो कुछ अपने पास रख सके? किसीके लिए जीना चाहती थी—जब वह खो गया है तो वह अब मौतके लिए जियेगी और देशके लिये मरेगी।

इसलिए 'इंकलाब ज़िन्दाबाद'। वह सबसे अपनेको तोड़ इंकलाबके

लिए रहेगी; इस अनुष्ठानमें बेंज़िलोसे दीक्षाका ऋण लेगी और उससे उऋण होनेमें लगी रहेगी। क्रांतिपर अपना जीवन वारेगी। देशपर अपनेको भूल जायगी!

और कुछ ही दिनों बाद, अपने घरसे अलग इस स्थानपर उसने अपनेको समितिमें और समितिके काममें पाया।

पर, हाय!

यहाँ भी गिडिटो...

५

गिडिटोने कहा—मैरिथ, बेंजी अभी घर नहीं पहुँचा! क्या यहाँ भी नहीं आया?

मैरिथ—नहीं, यहाँ तो नहीं आया। पर तुम आओ, बैठो। शायद आता हो।

"बैठनेकी फुर्सत तो कम है।"

"क्यों जी, बेंजिलोको अपने हाथमें रखनेसे क्या तुम्हारी मुट्ठी पूरी भर जाती है? क्या उसमें और किसीके लिए समाई नहीं है?"

"मैरिथ, बेंजोने अपना सारा प्यार तुमपर वार दिया है। इटलीको स्वतंत्र होने दो; देखो मैं खुद अपने हाथों तुम्हारा व्याह करूँगा। उससे पहिले व्याह करके बेंजो अपना नाश कर लेगा। मैरिथ, वह नेपोलियन बनना चाहता है—नेपोलियन!"

"और, क्यों जी, तुम क्या बनोगे? तुमने अपना प्यार किसीपर वार रक्खा है?"

"सो तुम नहीं जानतीं?—नेपोलियन पर!"

"तुम भी आदमी हो!"

"कौन कहता है? मैं स्त्री होता तो ज्यादा ठीक रहता।......अच्छा अब मैं चला।"

"तनिक ठहरो तो। बेंजी आना ही चाहता होगा! इतने, थोड़ा आतिथ्य ही स्वीकार कर लो।"

"अच्छा लाओ, पाँच मिनट बैठता हूँ। लाओ क्या देती हो?"

"नहीं, उतावले मत बनो। लेकिन हाँ, तुम शराब तो पीते ही नहीं।"

मैरिथने कुछ रूखे बिस्कुट ला रक्खे। बिस्कुटकी जल्दी-जल्दीमें नक़्क़ाशीदार चीनीकी एक बढ़ियाँ तश्तरी गिरकर फूट पड़ी। दो-तीन बिस्कुट भी गिरकर

चूर हो गए। बिस्कुट रखकर मिनट भरमें पड़ोसीसे टोस्ट और चाय ले आई।

सब कुछ चखकर गिडिटोने घड़ीकी तरफ़ देखकर कहा—ओह! अब तो जाना ही होगा। क्षमा।—कहकर प्रतीक्षा नहीं की; उठकर सीधा चल दिया।

"ठहरो तो,...अरे, ठहरो......अच्छा बस, पाँच मिनट!"

"अब नहीं मैरिथ, देखो बना तो फिर आऊँगा।"

गिडिटो नहीं ठहरा। ज़ीनेपर उतरते-उतरते उसने मनमें कहा—मुग्धा मैरिथ!

६

गिडिटो फिर सड़क और गली, गली और सड़क लाँघता हुआ एक अँधेरी गलीमें जा पहुँचा। और वहाँसे फिर उस कमरेमें जहाँ सभा जुड़ी थी। बेंजिलो अध्यक्षासनपर तमतमा रहा था।

गिडिटो जब वहाँ दाखिल हुआ तो सभा एकदम रुक गई। अयाचित उसका पहुँचना शायद वांछनीय न था।

अध्यक्षासनपरसे बेंजिलोने कहा—गिडिटो, किसकी इजाजतसे तुम अन्दर आये?

"बेंजी, चलो खाना ठंडा हो रहा है। पहले खा लो, तब और कुछ करना।"

"गिडिटो, बेवकूफ मत बनो। कैसे तुम यहाँ घुस आए?"

"इन्तजार करते-करते। नहीं तो क्या रातभर बैठा रहता? भूख लगी, तुम्हें ढूँढ़ता-ढूँढ़ता चला आया।"

"भाड़में जाय तुम्हारी भूख। मैं जरूरी काम कर रहा हूँ।"

"कोई जरूरी काम नहीं है। अभी तो तुम्हारा खाना सबसे जरूरी है।"

"गिडिटो, मैं प्रेसीडेण्ट हूँ। कहता हूँ तुम अभी चले जाओ।"

"तुम्हें कुछ खयाल भी है? कालेज खतम हुए पाँच घण्टे हो चुके। तबसे भूखे हो, कुछ नहीं खाया। तुम्हें भूखे छोड़कर मैं कैसे चला जाऊँ?"

"गिडिटो बेवकूफ़ी करोगे तो सख्ती करनी पड़ेगी।"

"करो सख्ती, कौन मना करता है। पर परमात्माके लिए भूखे मत रहो।"

बेंजिलोने झल्लाकर कहा—बेंजमिन, गिडिटोको हम यहाँ नहीं चाहते। तुम उसे बाहर निकाल सकते हो?

बेंजमिन नामका व्यक्ति उठा। उठकर देखा और फिर बैठ गया—जी नहीं।

"नहीं !" अध्यक्षने कहा, 'कोई है जो इसे बाहर कर दे ?"

दो व्यक्ति आगे बढ़े। वह काफ़ी पास आ गये कि गिडिटोने रिवाल्वर उनकी तरफ़ तानकर कहा—चलो, लौट जाओ अपनी जगहपर ! खबरदार, जो कदम भी आगे रक्खा।

फिर बेंज़िलोके पास पहुँचकर और उसकी बाँह पकड़कर कहा—चलो, बेंजी तमाशा न करो। घर चलो।

बेंज़िलोने जोरसे उसे धकिया दिया। गिडिटो गिरते-गिरते बचा। इतनेमें ही सभाके दो-तीन सदस्य उसकी तरफ़ लपके। उसने भीतरकी जेबसे एक तिरंगा कपड़ेका टुकड़ा निकाला और दोनों हाथोंसे ऊपर उठाकर चिल्लाया—सभ्यो, यह देखो। देखकर चाहे गोली मार दो, —मेरे दोनों हाथ ऊपर हैं। नहीं तो उसका सम्मान रक्खो और इस सभाको बरख़ास्त कर दो।

सभ्य, जो बड़े असभ्य हो रहे थे, अब सबके सब बड़े सुन्न बैठ गये।

"सुनो ! नायककी आज्ञा है, यह सभा यहीं बर्ख़ास्त होती है। मेरे तीन कहते कहते सब यहाँसे चले जायँ। ए······क।"

दो······।'······'।

कमरा बिलकुल खाली था।

गिडिटोने अब बेंज़िलोसे कहा—चलो बेंजी, खाना खाने चलें।

बेंज़िलो भौंचक था। पूछा—तो नायक तुम हो ?

"हूँ तो हूँ,—पर चलो, भूख लग रही है।"

"कहाँ चलूँ ?"

"घर।"

"मैरिथके यहाँ नहीं ?"

"जहाँ चाहो, वहाँ जाओ।"

"तुम न चलोगे ?"

"मैं अभी वहींसे आया था।"

"मैरिथके यहाँसे आये थे ?"

"हाँ।"

"अब न जाओगे ?"

"नहीं।

"घर पर मिलोगे ?"

"जरूर।"

"मैं घर पर न आया तो ?"

"तो बुरा होगा।"

"क्या होगा ?"

"बहुत बुरा होगा।"

"तो मैं घर पर न आ सकूँगा।"

"न आ सकोगे ?—कहाँ रहोगे ?"

"सो बतलानेकी जरूरत नहीं।"

"तो मैं भी साथ चलता हूँ।"

दोनों, साथ, मैरिथके स्थानकी ओर चले।

मैरिथके घरपर—

बें०—मैरिथ, तुम्हें पता है हमारे नायक गिडिटो महाशय हैं ?

मैरिथको यह पता न था। पर यह पता था कि बेंज़िलो नायकके प्रति बहुत सद्भावना नहीं रखता। नायकके नरमपन, ढीलेपन और सुस्तीपर बेंज़ी अपने तीक्ष्ण-कटु विचार मैरिथके सामने कई बार उत्तेजनाके साथ प्रकट कर चुका था। इसलिए जब गिटिडोके नायक होनेकी सूचना उसे मिली, तो वह प्रसन्न न हो सकी। न जाने क्यों, उल्टी पीली पड़ गई। उसने आतंकसे गिडिटोकी ओर देखा। इस दृष्टिमें भरे प्रश्नको अच्छी तरह न समझकर उसने कहा—"नायक कितना भोला भलामानस है, यह तुम शायद जानते ही नहीं ?"

बेंज़िलोने कहा—मैं खूब जानता हूँ। उसके भोलेपन पर मैरिथके सामने कई बार तरस खा चुका हूँ।

इसपर मैरिथ फिर दहल-सी उठी। कुछ लेने गई तो गिडिटोके कानमें कह गई—'खबरदार रहना।' लौटकर आई तो गिडिटोने कहा—बेंजी, क्या नेपोलियनसे खबरदार रहना होगा ?

बेंज़िलोने उत्तर दिया—नेपोलियन खुद अपनेको नहीं जानता। लेकिन खबरदार रहना अच्छा ही है।

काफ़ी रात बीते वे अपने डेरेको चले। पर रास्तेमें ही न जाने कब, बेंज़िलो लापता हो गया।

७

रात अँधेरी है, सुनसान है। पतलूनकी दोनों जेबमें पिस्तौल है। बेंज़िलो महलके दरवाजे तक आ गया है। दरवाज़ेपर संतरी टहल-टहल कर पहरा दे रहा है।

बेंज़िलोके आनेपर संतरीने सलाम किया।

"सब ठीक है?"

"बिलकुल।"

"उसी कमरेमें?"

"हाँ।"

रास्तेमें जितने मिले, उनमेंसे किसीका अभिवादन लेकर, किसीको फुसलाकर, कुछको डरा-धमकाकर और बाक़ी बचे दो-एकको ठंडा करके बेंज़िलो, उस कमरेके दरवाज़ेपर आ गया। कमरा प्रकाशित था। एलवर्ट अकेला रहता था, अभी तक उसने ब्याह न किया था।

बेंज़िलोने केवल झँपे हुए दरवाज़ेको खोलकर कहा—आ सकता हूँ?

उत्तर मिला—आइए।

उत्तर सुनने न सुननेकी पर्वाह किये बिना वह अंदर दाखिल हो गया।

एलवर्ट इतनी रात गए भी एक कुर्सीपर बैठा था। सामने छोटी-सी मेज़ थी। उसपर कुछ काग़ज़ एक रंग-बिरंगे बहुत बड़े शंखसे दबे हुए थे। पास ही एक ऊँचे स्टूलपर शेडदार लैम्प था, जो अच्छा खुशनुमा था; पर राजाओंके लायक बिलकुल न था। एलवर्टका सिर अपने दोनों हाथोंमें थमा हुआ था। एक कोहनी मेजपर रक्खी थी दूसरी कुर्सीकी बाँहपर। उसके माथेपर बल थे। ऐसे बैठे-ही-बैठे अनायास ही उसने 'आइए' कहा था।

आगत व्यक्तिको जब उसने देखा, तो वह बिलकुल बदल गया। हाथ दोनों कुर्सीकी बाँहोंपर आराम करने लगे। सिर सीधा हो गया, और वह थोड़ा हँसा।

—"ओहो, बेंज़िलो हैं!—मैं तो तुम्हें भूला जा रहा था।"

"मैं भूलने दूँ तब न!"

"यह भी ठीक है। आज शामको मुझे खबर मिली थी कि आप रातको दर्शन देंगे। पर अभी-अभी तो मुझे इसका ध्यान उतर ही गया था।"

"आपकी ख़बर ठीक थी। क्या इसके आगे और कुछ ख़बर भी थी?"

"उसे मैं आपसे जाननेकी आशा रखता हूँ।"

"आशा तो आप ग़लत नहीं रखते।"

"तो आज्ञा हो मेरे लिए—"

"एलबर्ट, अभी जल्दी काहेकी है? तुम्हें जल्दी हो तो बात दूसरी।"

"बड़ा सन्तोष है कि आपको जल्दी नहीं। नहीं तो जल्दी आपके मिज़ाजमें एक ख़ास चीज़ है। फिर निश्चयके बाद देरीका कारण ही क्या?"

"एलबर्ट, मालूम होता है, तुम अपने भाग्यसे परिचित हो। शायद समझते हो, प्रयत्न करनेसे भाग्य तो टलेगा नहीं, इसीलिए इस तरह यहाँ निश्चिंत बैठे हो। पर भाग्यको तुम्हारे प्रयत्नोंकी या निश्चिन्तताकी कुछ भी पर्वाह नहीं।"

"बेंज़िलो, तुम जानते हो, मैं भाग्यमें विश्वास करता नहीं। पर अब मालूम होता है, जैसे उसे मानना अच्छा है! मुझे भी विश्वास होता जा रहा है,—होनहार टलता नहीं।"

"जाने दो, इन बातोंको। तुम आज राजा हो, कल हमारे साथ मिलकर राजाकी दुश्मनीका दम भरते थे! वह क्या धोखा नहीं है,—और तुम इस पर दुःख नहीं करते?"

"यही तो मुश्किल है कि अफ़सोस मैं नहीं कर पाता। धोखा-वोखा मैं जानता नहीं। लेकिन मालूम होता है, इस तरह इटलीके लिए मैं शायद कुछ कर सकूँ।"

"एलबर्ट, तुम्हें शरम नहीं आती? राजा बने बैठे हो, जब कि सैकड़ों-हज़ारों तुम्हारे साथी तुम्हारी ही जेलोंमें सड़-गल रहे हैं। तुम्हारे देशवासी गुलामी और दरिद्रताके नीचे कुचले जा रहे हैं, तब तुम ऐशो-इशरतमें पड़े हो, और आस्ट्रियन जूतेके नीचे अपने उन भाइयोंपर हुकूमत चलाते हो?"

"भाई, लाज आती ही नहीं, तो क्या करूँ? मैं उसे जबरदस्ती बुलानेकी आवश्यकता नहीं समझता। आज इस कुर्सीपरसे सब देश-सेवकोंको नहीं तो कुछको तो मैं जेलसे छुड़ा ही सकता हूँ। पर तुम क्या कर सके हो, क्या कर सकते हो?...और यह कुर्सी महलमें तो रक्खी है; पर खूब देख लो, बिल्कुल मामूली है। क्या आधी रात तक ऐसी कुर्सीपर जागते बैठना तुम्हारी निगाहमें पाप है? और तुम यह नहीं जानते कि हुकूमत करनेवालोंको अपने सिरपरका जूता ज्यादा खलता है। क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि आस्ट्रियन मुझसे जितना डरते हैं,—तुमसे उतना नहीं?"

"तुम आज गद्दीके मोहमें पड़कर इटलीको बेच रहे हो ।"

"शायद ।"

"तुम यह नहीं समझते ?"

"अभी तक नहीं ।"

"लेकिन तुमको समझनेके लिए ज्यादा वक्त नहीं दिया जा सकता ।"

"ठीक है, मैं पहले ही काफ़ी ले चुका हूँ ।"

"लेकिन तुम्हें अपना अधिकार है, राष्ट्रको खो देनेका नहीं ।"

"राष्ट्रको न समझनेका जैसा तुम्हें अधिकार है, वैसा मुझे भी तो उसे समझनेका अधिकार है ।"

"हम इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते ।"

"बर्दाश्तकी आदत पैदा करनी चाहिए ।"

"वह आदत अभी पैदा करनेका वक्त नहीं है । अभी समय है कि अपनी गति पर पछताओ, लजाओ, और पीछे मुड़ो ।"

"नहीं तो ?"

"···नहीं तो परिणाम भयंकर होगा । हम अपने देशका नाश नहीं देख सकते ।"

"बेशक तुम अपने देशका नाश या लाभ नहीं देख सकते ।"

"जो हो, अब वक्त कम है ।" बोलो—क्षमा या दंड ?

"तुम्हें ऐसा अधिकार किसने दिया ?"

"समझो कि पहली घड़ीसे जीवनकी अन्तिम घड़ी तक एक—बस एक—राष्ट्रकी चिन्ता रखनेवाले तरुणोंने ।"

"तो उनसे कहो, उन्होंने भूल की। ऐसा अधिकार परमात्माके हाथसे छीननेकी आवश्यकता नहीं ।"

'खैर, हुआ' इस भावसे, ध्वनिसे बेंजिलोने कहा—

"बोलो, क्षमा या दण्ड ?"

"दंड या पुरस्कार, जो भी होगा जरूर मिलेगा, पर क्षमा ! ···क्षमा नहीं ।"

"क्षमा नहीं ?···।"

यह कहकर उसने जेबमें हाथ डाल दिया। एलबर्टने सब कुछ देखा। वह भी देखा, जो बेंज़िलो नहीं देख पा रहा था । बोला—"बेंज़िलो, एलबर्टमें सीज़रका खून है, और इटलीका देश-प्रेम है । क्षमा नहीं ।"

"नहीं ?—तो लो ।"

यह कहा और पिस्तौल खींच ली । इतनेमें ही किसीने कस कर बाँह पकड़ लिया । थोड़ा दबा । गोली शेड और लैम्पको चूर-चूर करती हुई निकल गई । रोशनी बुझ गई । गुप्प-अन्धेरा हो गया ।

गिडिटोने पिस्तौल बेंज़िलोके हाथसे छीन कर फेंक दी । वह झनझनाकर फ़र्शपर पड़ी ।

कुछ भी न दीख पड़ रहा था । बेंज़िलोने कहा—"कौन है ? अलग हट जाओ नहीं तो सिर फोड़ दूँगा ।" इतना कहकर दूसरी जेबमें उसने हाथ डाल लिया ।

गिडिटोने एक ज़ोरकी चपत उसकी कनपटीपर जड़ दी ।

"कमबख़्त ।—यहाँ आया है मरने । चल घर, चल भाग ।"

जब चलने और भागनेमें देर लगी तो कान पकड़कर उसे ढकेलते हुए कहा—

"अरे भागता है या नहीं ? भाग जा झटपट । नहीं तो मर जायगा ।"

इतनेमें ही एक गोली सनसनाती हुई गिडिटोकी बाँहको आर-पार कर गई और बेंज़िलो भाग गया ।

* * *

शोर मचाकर जब नौकर चाकर सिपाही-प्यादे इकट्ठेके इकट्ठे वहाँ हाजिर हुए और रोशनी की, तो गिडिटो बाँह पकड़े जहाँका तहाँ खड़ा था, और एलवर्ट कुर्सीपर वहीं पिस्तौल ताने बैठा था ।

गिडिटो पकड़ लिया गया ।

बेंजिलो बेतहाशा घबड़ाया-सा दौड़कर जब सदर दर्वाजेके बाहर आया, तो किसीने पुकारा—बेंज़ी !

देखा कि सामने मैरिथ चिन्ता-व्यग्र खड़ी है, मैरिथने पूछा—

"बेंजी, गिडिटो कहाँ है ?"

"गिडिटो ?"

बेंजिलोकी घबराहट मैरिथसे छिपी न रह सकी । उसने जोर देकर कहा—"हाँ, गिडिटो ।"

"वह तो मुझे अन्दर नहीं मिला ।"

"अन्दर नहीं मिला ?"

"मुझे नहीं मालूम ।"

उसने चिल्लाकर पूछा—नहीं मालूम ?

"नहीं !...लेकिन तुम इस वक्त यहाँ कहाँ घूम रही हो ? चलो घर चलें ।"

"गिडिटो रात-रात भर तुम्हारी तलाशमें घूमे,—और तुम्हें अब चैनकी सूझे। ऐसे ही हो तुम ?...सच बताओ गिडिटो कहाँ है ?"

"मुझे कैसे मालूम हो ?"

"यहीं खत्म हो जाओगे।—बोलो, नहीं मालूम हो ?"

बेज़िलोने देखा, पिस्तौल सीधी उसके मुँहकी तरफ़ तनी है, मैरिथकी आँखोंमें जैसे वज्र-काठिन्य जल रहा है। वह खुद निहत्था था, दूसरा पिस्तौल भी वहीं छूट गया था। उसने कहा—मालूम होता है, मैंने उसे गोली मार दी है।"

मैरिथ इसपर एक चीख छोड़कर और रिवाल्वर बेंज़िलोके ऊपर फेंक कर अन्दर भाग गई। वह भरी पिस्तौल छूटी नहीं, उसके बदनसे लगकर धरतीपर गिर पड़ी।

बेंज़िलोने उसे उठा लिया।

* * *

अन्दर जाकर मैरिथने देखा, गिडिटोको कई रक्षक हथकड़ी डाले लिये जा रहे हैं। वह बाँहको कसकर पकड़े हैं। उसने जब मैरिथको देखा, तो कहा-

"मैरिथ, तुम यहाँ कहाँ ? बेंजी तो तुम्हें याद कर रहा था। जाओ, उसकी देख-भाल करना। कहीं वह रो-रोकर मर न जाय।"

मैरिथ गई नहीं,—वह वहीं खड़ी देखती रही।

"धित, यह क्या आँखें फाड़ रही हो।...जैसे बेंज़ी मैं ही हूँ। चलो, जाओ, बेंज़ीको ढूँढ़ कर उसे सान्त्वना दो।"

वह फिर भी नहीं गई।

"मैरिथ, देखो, नहीं जाओगी तुम ?"

मैरिथ चुपचाप चली गई।

८

गिडिटोके खिलाफ़ प्रमाण सङ्गीन थे। वह रातको महाराजके कमरेमें पाया गया है। बाँहमें गोलीके घाव हैं। जेबमें एक पिस्तौल मिली है। इतना होने पर भी वह छूट गया। एलबर्टका इस सम्बन्धमें खास आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ था।

घरपर आकर उसने देखा, बेंज़ीलोका सब सामान अस्तव्यस्त पड़ा था। उसके दिलमें एक अज्ञात आशंका घर कर बैठी। वह मैरिथके पास गया। बेंज़ी वहाँ न था। गिडिटोने डाँटा, मैरिथने अपनी कर्त्तव्यपरता जताते हुए, क्षमा माँग कर कह दिया—"मैंने बहुतेरा ढूँढ़ा, मुझे वह नहीं मिला।"

गिडिटोने कहा—"और ढूँढ़ो, मैरिथ! जब नक न मिले, तब तक ढूँढ़ो।"

"ढूँढूँगी तो; पर तुम भी कहीं खो न जाना।"

"मैं नहीं खोऊँगी,—पर उसे तो पाना ही होगा।"

"जो कहोगे, सो करूँगी; लेकिन कहे देती हूँ, वह बहुत जीता न रहेगा।"

"यह तो मैं भी जानती हूँ; लेकिन ऐसे रूठ कर तो वह न जाने पायगा।"

"गिडिटो, तुम ऐसे-ऐसे क्यों हो रहे हो?"

"मैं कुछ भी नहीं हो रहा। मैं यह सोच रहा हूँ कि बेंज़ीके अब नेपोलियन बननेका अन्त आ गया है। मेरे पास बहुत सुख था; अब मेरा सुखका आधार छिन जायगा। और, मैरिथ तुम्हारा सोहाग..."

"ठहरो गिडिटो! मेरे सुहागकी तुम चिन्ता करते होते तो क्या बात थी? मैं जानती हूँ, मुझे अपने सोहागका अर्घ्य किसकी वेदीपर चढ़ाना होगा। वह देवता स्वीकार करें या तिरस्कार कर दें, अर्घ्य तो समर्पणके ही लिए होता है।

"तो मैं तुम्हारे बेंज़ीको ढूँढ़ने जाता हूँ।"

कहकर वह चल दिया। मैरिथने सुना-सुनाकर कहा—जाओगे तो हो ही। मेरे कहनेसे रुकनेवाले तुम थोड़े ही हो।'

९

गिडिटोके कमरेमें—

गि०—छिः, बेंज़ी, इस तरह भागा करते हैं?

बें०—तुम बार-बार इतने बड़े क्यों बनते हो? मुझे इसपर बहुत खीझ उठती है।

गि०—मैं बड़ा बनता हूँ! बोलो, कहो तो तुम्हारे जूते साफ़ कर दूँ।

बें०—तुमने मुझे थप्पड़ क्यों मारा था?

गिडिटोने यह नहीं कहा कि थप्पड़ गोलीसे बहुत छोटा है। उसने कहा—"बस यही बात है! तो यह लो, जितने चाहो मेरी पीठपर जमाओ।"—यह

कहकर बेंज़ीके पास एक बेंत रख दी।

"गिडिटो, तुम बड़े होशियार हो; लेकिन मैं तुम्हें बड़ा मानूँगा ही नहीं।"

"तुम तो हो पागल। मुझे बड़ा मानो या छोटा मानो। बलासे, कुछ भी मानो; पर अपना मानो।"

"जितनी ही ऐसी बात कहोगे, उतना ही मैं तुम्हें दुश्मन समझूँगा।"

"अच्छा, दुश्मन ही समझो; लेकिन अब मैरिथके पास जाओ। वह याद कर रही थी। नहा-धो लो और कपड़े बदल लो। कैसे मैले हो रहे हो!"

बेंज़िलो मनसे चाहे कुछ भी कहे; पर ऐसी बातोंमें उसका गुजारा होता है गिडिटोकी आज्ञाओं पर ही। वह स्नानके लिए चला गया।

गिडिटोने इतनेमें एक नया साफ़ सूट निकाल रक्खा। लौटनेपर ठीक-ठाक करके उसे मैरिथके पास रवाना कर दिया।

मैरिथके घरका दरवाजा बंद था। उसने नौकरनीको आज्ञा दी थी, कि जो आये, पहले उसे सूचना दी जाय। बेंज़िलोने दर्वाजा खटखटाया, नौकरनी मैरिथके पास पहुँची। पूछा गया—"कौन है?'

"बेंजिलो।"

"उनसे क्षमा माँगकर कहना, मेरे मस्तकमें बड़ी पीड़ा है। अभी न मिल सकूँगी। फिर पधारें।"

नौकरनीके मुँहसे जब उसने यह सुना, घड़ों पानी उसपर गिर गया। उसने सोचा—'गिडिटोने मुझे यहाँ तक बेवकूफ बनाया! उसकी यह हिम्मत!' घर जाकर सीधा पलंगपर पड़ गया। गिडिटो अनुपस्थित था।

१०

इधर गिडिटो नायक-गोष्ठीमें आया है। वही कमरा, वे ही लोग।

लारेंजो—बेंजिलोका अपराध अक्षम्य है।

एंटिनो—मैं मानता हूँ, समितिके नियमोंके अनुसार उसने बहुत बड़ा अपराध किया है। किन्तु नियमोंमें संशोधनकी बहुत आवश्यकता है, उनमें जकड़े रहनेकी इतनी आवश्यकता नहीं है।

ला०—नियम-नियम है और जबतक वे बदल नहीं जाते, तबतक उनका उल्लंघन सर्वथा दण्डनीय है।

गिडिटो—अपराध गुरुतम हो, तो वह हमेशा विचारणीय है ! इसके विचार और फैसलेके लिए एककी बुद्धिपर निर्भर रहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। मैं तीन आदमियोंकी दण्ड-समितिको इसका भार सौंप देना चाहता हूँ।.. भाई एंटिनोकी क्या राय है ?

एं०—अपराधीके हितकी रक्षामें यह सबसे उत्तम उपाय है।

गि०—भाई लारेंजो !

ला०—न्याय-सिद्धिकी इसमें पूर्ण आशा है।

गि०—मैरिथ, सिपियो, गैरीबाल्डी,—इन तीनोंकी दंड-समिति होगी। भाई एंटिनो अभियुक्तके पक्षकी ओरसे वकील होंगे; भाई लारेंजो अभियोग-की ओरसे। मैं इससे सम्बन्ध नहीं रखना चाहता।

एं०—नायकको अपनी ज़िम्मेदारीसे बचनेका अधिकार नहीं होना चाहिए।

ला०—मेरा प्रस्ताव है कि दण्ड-समितिका फैसला नायकके हस्ताक्षरके बाद प्रामाणिक हो।

एं०—बिल्कुल ठीक।

गि०—आप लोग छोड़ेंगे नहीं। बड़ी अनिच्छासे यह भार भी मुझे अपने सिर लेना होता है। भाई एंटिनो इसका ध्यान रक्खें कि अभियुक्तको सूचना न हो। सबसे इस सम्बन्धमें समानता, बन्धुता और प्रजातन्त्रके नाम पर, इटलीके मान-चित्रकी छत्र-छायामें शपथ ले ली जाय।...सबको ध्यान रहे, परमात्माकी एक विभूतिको, एक परमात्मा-खण्डको, मारने या जीवित रहने देनेका भार उनपर है।

११

घरपर गिडिटो आया तो बेंज़िलो आँख मूँदे सो रहा था। इस समय इस चेहरेमें, जिसके झरोखे झँप रहे थे, कैसा मनोमुग्धकारी भाव था ! न गुस्सा था, न स्नेह था, न हास्य था, न कुछ था। बस, एक अमूल्य बालपन था, एक भोली स्वाभाविकता थी। उसे मालूम पड़ा, जैसे इस सौन्दर्यका यह अंतिम क्षण है।

वह सामने कुर्सी लाकर बैठ गया। बेंज़िलोके बाल उसके माथे पर आ रहे थे। उसने उन्हें पीछेको सरका दिया। वह फिर वहीं आ गिरे। उसने फिर सरका दिया। अबकी तीसरी बार उसने नहीं सरकाये। तीन चार हिले-मिले

वालोंकी इस उद्दण्ड लटको वह देखता रह गया। कैसे सुनहरे, सुनहरे वाल थे। और सबके सब तो सिरपर अच्छी तरह लेटे थे, यही लट कैसी हठ करके उसके माथेके आगे आ-आ पड़ती थी।

गिडिटोने उस लटके अगले सिरेको कैंचीसे काट लिया। फिर बालके वे नन्हें-से टुकड़े उसने दराज़से एक लाकेट निकालकर उसमें बन्द कर दिये।

फिर अलग जाकर वह अपनी किताब पढ़ने लगा। लेकिन कौन जानता है, वह बेचारी किताब कैसी क्या पढ़ी गई!

१६

गिडिटो और वेंज़िलो शतरंज खेल रहे हैं। गिडिटो हार पर हार खा रहा है। फिर भी जैसे हारना चाहता है। आज वह जैसे दिन भर हर एकसे हारता रहना चाहता है।

वेंज़िलो, बेचारा बालक, झल्ला रहा है। इस शतरंजके वक्त वह सब कुछ भूल जाता है। मात जरा-ज़रासी देरमें हो रही है—इसपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है।

"गिडिटो, क्या हो रहा है? यहाँ चलोगे तो बुरी शह लगेगी।"

"अरे, हाँ!"

....

"अच्छा, यह लो, मात हो गई।"

"अच्छा, बेंज़ी, अबके लो, मिनटोंमें मैं तुम्हें मात कर देता हूँ।"

"मात क्या खाक दोगे?"

"खाक-वाक मत चाहो जी, मात दूँगा—मात! चारों खाने मात!"

"अच्छा।"

खेलना शुरू हुआ ही था कि सिपियो कमरेमें दाखिल हुआ। गिडिटो पीला पड़ गया। वेंज़ी आगेकी और चाल सोच रहा था। गिडिटोने कहा—

"वेंज़ी तुम नहाये नहीं! घंटोंसे शतरंज ही होती रही। इसे यों ही बिछी रहने दो। जाओ नहा आओ।"

"मैं कहता हूँ, तुमसे क़यामत तक मात न हो।" बेंज़ीने कहा।

"अच्छा नहाके आओ, फिर देखना।"

उसके चले जाने पर सिपियोने फ़ौजी सलाम करके एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर पेश किया। गिडिटोने फ़ौरन उसे खोल लिया। लिखा था—

बेंज़िलोने—

अ. नियम-विरुद्ध, नायक-गोष्ठीकी बिना सूचना और आज्ञाके अलग दल बनाना प्रारम्भ किया।

आ. समितिकी नीतिके खिलाफ़, नायककी स्पष्ट आज्ञाको तोड़कर, एलबर्ट की हत्याका प्रयत्न किया।

इ. इस प्रकार निरंकुशता और आज्ञोल्लंघन की प्रवृत्ति बढ़ाई।

ई. नायकको खतरेमें डाला।

इसलिए—

प्राणदण्ड

इसके नीचे तीनों जजोंके हस्ताक्षर थे। नीचे एक और नोट था—

"मैरिथ दण्डकी पूर्तिका भार खुद उठाना चाहती है। इसके स्वीकार करनेमें हम कोई आपत्ति नहीं देखते।"

इसके नीचे सिपियो और गैरीवाल्डीके हस्ताक्षर थे।

गिडिटोने अभियोगोंमें (ई) का वाक्य काट दिया और अपने हस्ताक्षर कर दिये। सिपियो चला गया।

*   *   *

बेंज़िलो लौटा तो गिडिटोने कहा—"शतरंज बन्द करो। आओ कुछ खायें-पीयें।"

'लैन्डलेडी' को बहुत जबर्दस्त आर्डर दे दिया गया। कई तरहकी शरावें और सब कुछ प्रस्तुत हो गया।

"गिडिटो, तुम शराब पीओगे?" बेंजिलोने पूछा।

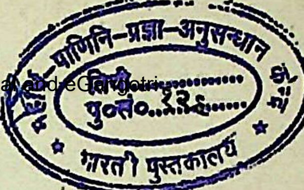
"हाँ-हाँ, सुनते हैं, इसमें बड़े गुण हैं।" गिडिटोने जवाब दिया।

दोनोंने जितना हो सका खाया और जितनी समा सकी शराब पी। फिर, दोनों बदहोश सो गये।

———

१३

मैरिथकी आयोजनासे शनिवारके रोज झीलकी सैरके लिए जानेका



निश्चय हुआ है ।

खानेका सब सामान साथ है। आज गिडिटो बिल्कुल पीला पड़ा हुआ है; लेकिन हदसे ज्यादा प्रसन्न मालूम होता है । दो-तीन घंटे झीलमें किश्तियोंसे-सैर हुई । इस सारे कालमें एक मिनट भी तो शायद ही चुप रहा है । दुनियाभरके क़िस्से-कहानियाँ, चुहलबाज़ियाँ उसे सूझ रही हैं । घड़ी-घड़ी-पर उसे शराबीकी आवश्यकता पड़ती है ।

बेंज़िलो इन बातोंसे झल्ला रहा है । बड़ी पैनी दृष्टिसे वह इन बातोंको देख रहा है, और फिर-फिर कर मैरिथकी ओर देख लेता है ।

मैरिथ चित्र-सरीखा अपना एक जैसा चेहरा लेकर सब हँसी खुशीमें भाग ले रही है । क्या प्रलय उसके भीतर मच रही है,—कौन है जो उसे जान सकता है ? न मालूम वह आज अपनी क़ब्र खोदने जा रही है या मुक्ति पाने जा रही है !

झीलके उस पार जंगलमें सब आ गये हैं । गिडिटोने कहा—"बेंज़ी, देखो, हँसोगे नहीं तो मैं गुदगुदी मचा दूँगा ।"

"क्या आज ही हँस लोगे ?"

"और नहीं तो क्या रोज-रोज हँसना मिलेगा ?"

"ठीक है, शायद रोज़-रोज हँसना नहीं मिलेगा ।"

"बेंज़ी, इस जंगलमें कोई हमारी आवाज़ नहीं सुनेगा । आओ, खूब हँस लें, फिर इकट्ठे रो लेंगे ।"

"गिडिटो; तुम आज बिलकुल जानवर जान पड़ते हो ।"

"जान पड़ता हूँ ! बस ! अरे, तुम्हें मालूम नहीं, मैं हूँ ही जानवर ! लेकिन, कहता हूँ, रोज़-रोज नहीं रहूँगा ।"

गिडिटोने बहुत शराब पी ली थी । वह अब ऊटपटाँग बक रहा था । मैरिथने कहा—बेंज़ी, इधर आओ । उन्हें अब आराम करने दो ।

बेंज़िलोने यह सुना, गिडिटोके आरामके प्रति मैरिथकी व्यग्र चिन्ता और उत्कण्ठा देखी, गिडिटोको देखा, और फिरकर अपनी ओर देखती हुई मैरिथको देखा, और 'आता हूँ' कहकर गिडिटोपर पिस्तौल तान दी । पर छोड़े-ही-छोड़े कि एक गोली उसकी छातीमें लगी । वह ढह पड़ा । उसकी गोली हवामें सन्-सन् करती हुई निकल गई ।

बेंज़िलो कुछ भी बोल न सका । बात-की-बातमें निष्प्राण हो गया ।

गिडिटोने आगे बढ़कर, उसी जिद्दी बालोंकी लटको हटाकर, बैंज़ीके माथे-पर एक चुम्बन ले लिया। कहा—"मैरिथ, अब उसे उठाओगी नहीं ?"

मैरिथ डर रहीं थी, गिडिटो न जाने क्या हो रहा था।

चर्चके घेरेकी जमीनमें एक बहुत गहरा गड्ढा खोदकर बेंजीकी लाश उसमें रक्खी गई। फावड़ेसे गीली-गीली मिट्टी उसपर डाली गई। ८ फीट ऊँची ४ फीट चौड़ी और ८ फुट लम्बी वह जगह मिट्टीसे ऊँपरतक भर दी गई।

समितिके सब सदस्य आये थे, और अब चले गये। किसीने उसपर एक आँसू न बहाया।

गिडिटो मुँह लटकाये खड़ा था—जैसे उसकी आँखोंमेंका पानी और बदनमेंका खून सब सूख गया है।

बस, मैरिथ रो रही थी। बेचारे मृत बेंजीके लिए नहीं किन्तु बेचारे जीवित गिडिटोके लिए।

सबके चले जानेपर गिडिटोने आगे बढ़कर उस क़ब्रपर ताजी-ताजी पड़ी हुई मिट्टीका एक चुंबन ले लिया। पाससे एक फूलको तोड़कर उसके सिरहाने रख दिया। और गर्दन लटकाये हुए एक तरफ़को बढ़ चला।

मैरिथ पीछे लपकी—चिल्लाई——

"गिडिटो !"

"हाँ"—यह हाँ जैसे उसी क़ब्रमेंसे निकल रही थी।

"कहाँ जाते हो ?"

"घर।"

"मेरे यहाँ नहीं ?"

"नहीं।"

मैंरिथ भी इसपर वैसा ही मुँह लटकाये दूसरी तरफ़ चल दी।

———

